उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

विकासात्मक मनोविज्ञान : पूर्व युवावस्था से वृद्धावस्था (एमएपीएसवाई-616)

Developmental psychology: Early Adulthood to Old Age (MAPSY-616)

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	पूर्व युवावस्था की विशेषताएं एवं विकास कार्य (व्यक्तित्व एवं सामाजिक) (Characteristics and Developmental Task (Personality and Social) of early Adulthood)	1-9
2.	युवावस्था में रुचि में परिवर्तन और व्यक्तिगत एवं सामाजिक उलझनें (Change in interest and Personal and Social Conflicts in Adulthood)	10-27
3.	व्यावसायिक, पारिवारिक,वैवाहिक एवं पितृत्व या मातृत्व हेतु समायोजन; वैवाहिक जीवन में समायोजन का मूल्यांकन (Vocational, Family, Marital and for Parenthood Adjustment; Assessment of Marital Adjustment)	28-42
4.	मध्यावस्था एवं वृद्धावस्था:विशेषताएँ,शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक परिवर्तन(Middle Age and Old Age: Characteristics, Physical, Psychological and Social Changes)	43-59
5.	मध्यावस्था (व्यावसायिक) और वृद्धावस्था (सेवानिवृत्ति और पारिवारिक) के दौरान समायोजन (Adjustment during Middle age(Occupational) and Old age(to Retirement and Family life)	60-70
6.	युवावस्था, मध्यावस्था एवं वृद्धावस्था के सम्बन्ध में इरिक्सन की संकल्पना; सफल वृद्धावस्था के संप्रत्यय एवं मृत्यु और मरण के प्रति अभिवृत्ति; वृद्धाश्रमों का योगदान एवं भूमिका(Erikson's Concept regarding Adulthood, Middle Age and Old age, Concept and Attitude towards Successful Aging, Death and Dying; Role and Contribution of 'Old Age Homes')	71-90
7.	मानव विकास का अध्ययन की विधियां :अनुदैर्ध्य, क्रॉस-अनुभागीय और अनुक्रमिक अनुसंधान दृष्टिकोण; विकासात्मक अध्ययन में पद्धतिगत मुद्दे (Methods of studying human	91-103

	development: Longitudinal, Cross-sectional and Sequential Research Approaches; Methodological issues in developmental studies)	
8.	भारत में विकासात्मक मनोविज्ञान एवम विकास पर संस्कृति का प्रभाव (Developmental psychology in India, Impact of Culture on Development)	104-1211
9.	भारतीय संदर्भ में बाल विकास पर उभरते मुद्दे :बाल शोषण, मीडिया प्रभाव, विविध पारिवारिक संदर्भों में पालन-पोषण की प्रथा (Emerging issues on child development in the Indian context: Child abuse, Media impact, Parenting practices in diverse family context)	122-139

इकाई 1 पूर्व युवावस्था की विशेषताएं एवं विकास कार्य (Characteristics and Developmental Task (Personality and Social) of early Adulthood)

इकाई

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 प्रसार

1.4 पूर्व युवावस्था में विकास

1.5 पूर्व युवावस्था की विशेषताएं

1.6 पूर्व युवावस्था के विकासात्मक संकृत्य

1.7 पूर्व युवावस्था में व्यक्तित्व एवं सामाजिक विकास

1.7.1 व्यक्तित्व विकास

1.7.2 सामाजिक विकास

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 अभ्यास प्रश्न

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.1 प्रस्तावना:- विकास एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। अतः जीवन अवस्थाओं का विभाजन निर्पेक्ष नहीं सापेक्ष है। विकास की दृष्टि से मानवीय जीवन अवधि को विभिन्न अवस्थाओं में विभाजित किया गया है और प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति में विकास देखने को मिलता है।

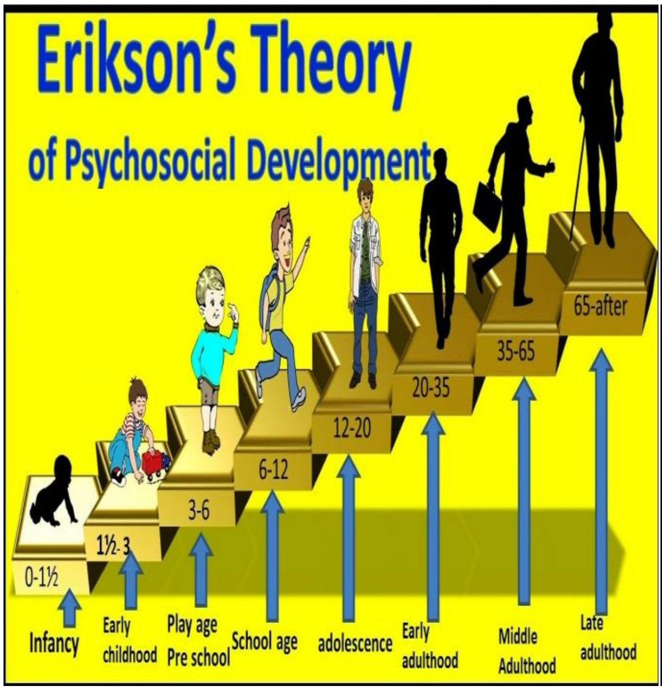

क्रम सं०	अवस्थाएं	आयु काल
1	गर्भ कालीन अवस्था	0-9 माह
2	शैशवास्था	जन्म से 1 वर्ष 6 माह
3	बचपनावस्था	1 वर्ष 6 माह से 3
4	वाल्यावस्था	3-6 वर्ष
5	यौनारंभ	6-12 वर्ष
6	किशोरावस्था	12-20 वर्ष
7	प्रौढ़ावस्था प्रारभिक	20-35 वर्ष
8	मध्यावस्था	35-65 वर्ष
9	वृद्धावस्था	65 से आगे

वाल्यावस्था यदि विकसित व्यक्तित्व का मूलभूत आधार है तो किशोरावस्था जीवन को दिशा प्रदान करती है। उसी प्रकार पूर्व युवावस्था, उत्तरदायित्व का आभास कराती है। यहां पर पूर्व युवावस्था की विशेषताओं एवं महत्व को समझाने का प्रयास किया गया है आशा है प्रस्तुत पाठ्य सामग्री छात्रों के लिए उपयोगी होगी।

1.2 उद्देश्य:-

इस इकाई को पढने के पश्चात आप

1. पूर्व युवावस्था के विकास से अवगत होंगे|
2. पूर्व युवावस्था की विशेषताएं, पूर्व युवावस्था से संबंधित व्यक्तित्व तथा सामाजिक विकास के विषम से अवगत हो सकेगें।

1.3 पूर्व युवावस्था प्रसार (Early adult hood range)-

किशोरावस्था के बाद व्यक्ति के जीवन में परिपक्वता आ जाती है । इसमें भी दो उप अवस्थाएं होती है जिन्हें क्रमशः (क) पूर्व युवावस्था (ख) उत्तर युवावस्था के नाम से जाना जाता है। लगभग 18 से 40 वर्षो की आयु पूर्व युवावस्था ही मानी जाती है इसे युवावस्था भी कहते हैं। उत्तर युवावस्था 40 वर्ष की आयु से वृद्धावस्था के पूर्व तक ही होती है। इसे अधेड़ावस्था भी कहते है।

(क) पूर्व युवावस्था:- इस अवस्था में शारीरिक एवं सामाजिक विकास उच्च स्तर तक हो जाता है। इसमें व्यक्ति विशेष रूप से अपनी शिक्षा पूर्ण कर जीविका प्राप्त करता है। व्यवसाय का चयन कर आर्थिक एवं सामाजिक रूप से स्वावलंबी बनने की कोशिश करता है। पारिवारिक एवं सामाजिक रूप से वह नई भूमिकाओं और उत्तरदायित्वों का वहन करना प्रारंभ कर देता है। नवीन मूल्यों को सीखना, रचनात्मक कार्य करना, जीविकोपार्जन, पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन, संतानोत्पत्ति और सामाजिक प्रत्याशाओं को पूरा करना, इस अवस्था के प्रमुख संकृत्य हैं । इसी कारण इसे समस्याओं की उम्र भी कहते हैं। इस अवस्था में भूमिका निर्वाह वह लोग अधिक सफलतापूर्वक करते हैं, जो पूर्व की अवस्थाओं में अतिसंरक्षण में नहीं रहते हैं। एरिक्सन 1960 ने इसे पार्थक्य- संकट का समय माना है, क्योकि इससे व्यक्ति नये सिरे से जीवन प्रारम्भ करता है।

1.4 पूर्व युवावस्था में विकास:-

पूर्व युवावस्था में व्यक्ति का विकास पूर्ण आकार या शक्ति तक हो जाता है। शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास उच्च स्तर तक हो जाता है। युवावस्था के प्रारम्भिक काल में मांसपेशीय शक्ति, संवेदी तीक्ष्णता, हृदय कार्य पहले वढते है तत्पश्चात घटने लगते हैं । कुछ लोगों का वजन कम हो जाता है । कुछ लोगों के बाल गिरने लगते हैं। प्रारम्भिक अवस्था के शारीरिक परिवर्तन पहले मंद गति से फिर शीघ्र गति से होते दिखाई देते हैं। आंखो की देखने की क्षमता में धीरे धीरे ह्यस होता है । इस प्रकार पूर्व युवावस्था में उम्र बढने का नकारात्मक प्रभाव जीवन के आरंभिक प्रोढावस्था में देखा जा सकता है। व्यक्ति के प्रमुख अंगों की शक्ति का ह्यस होने लगता है। धमनियों की क्षमता पूर्ववत नहीं रहती है। बेली का मत है कि 18 वर्ष बाद वुद्धि विकास रूक जाता है। इसके वाद इसमें स्थिरता आ जाती है। अपवादी व्यक्तियों में विकास 26 वर्ष तक प्रदर्शित हो सकता है। कुछ लोगों में इसके बाद ह्यस भी प्रदर्शित हो सकता है।

पूर्व युवावस्था अनेक उत्तरदायित्व वहन करने की अवस्था होती है। पारिवारिक एवं सामाजिक रूप से व्यक्ति नई भूमिकाओं एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना प्रारंभ कर देता है। जीविका व

अर्थोत्पादन के अतिरिक्त वह वैवाहिक जीवन में भी प्रवेश करता है। इस अवस्था में पति-पत्नी के बीच संवेगात्मक संबंध रहता है। बच्चे होने पर माता पिता का भी दायित्व निभाना पड़ता है। भारत की संस्कृति में प्रायः संयुक्त परिवार होते हैं । अतः इस आयु के व्यक्तियों को अपने श्रेष्ठ, समकक्ष तथा छोटे बच्चों के साथ अलग अलग भूमिका निभाते हुऐ परिवार में सामंजस्य स्थापित करना होता है। इसकी सफलता पर ही पति-पत्नी एवं परिवार के अन्य सदस्यों की प्रसन्नता और संतोष निर्भर करता है। विभिन्न विषमताओं के रहते हुए भी प्रारंभिक प्रौढ़ावस्था, जीवन में प्रगति तथा सफलता का अद्वितीय अवसर प्रदान करता है।

1.5 पूर्व युवावस्था की विशेषताएं :-

पूर्व युवावस्था में विकास की प्रक्रिया लगभग पूर्ण हो जाती है। इस स्तर पर विकास की दिशा नकारात्मक हो जाती है। जैसे बाल का झड़ना, दांत का टूटना आदि। यह अवस्था व्यक्ति के जीवन में निर्भरता से स्वावलम्बन तथा स्वतंत्रता की होती है। शिक्षा पूर्ण हो जाती है एवं व्यक्ति व्यवसायिक जीवन में प्रवेश कर आर्थिक एवं सामाजिक रूप से स्वावलंबी बनने का प्रयास करता है। पारिवारिक एवं सामाजिक रूप से नई भूमिकाओं एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता है। इस आयु में वह वैवाहिक जीवन में प्रवेश करता है। संतान उत्पन्न करने की अवस्था होती है। पति पत्नी के बीच में संवेगात्मक संबंध रहता है। बच्चे पैदा होने पर माता पिता की भी भूमिका एवं दायित्व निभाना पड़ता है। भारत की संस्कृति में सभी परिवार एकल नहीं होते है। अतः इस आयु में व्यक्ति को अपने से श्रेष्ठ, समकक्ष तथा छोटे बच्चों के साथ अलग अलग भूमिका निभाते हुए परिवार में सामंजस्य स्थापित करना होता है। स्पष्टतः यह एक गंभीर पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति होती है जिसमें व्यक्ति को बहुत ही उदारता एवं प्रेम के साथ परिवार के संचालन में योगदान करना होता है। इसकी सफलता पर ही पति पत्नी एवं परिवार के अन्य सदस्यों की प्रसन्नता एवं संतोष निर्भर करता है। इस अवस्था में पति का न रहना पत्नी के लिए ज्यादा गम्भीर समस्या उत्पन्न करता है। अधिकांश स्त्रियॉ आर्थिक रूप से पति पर निर्भर रहती हैं । इसलिए पति के अभाव में घर के बाहर रोजगार ढूढना नौकरी या व्यवसाय करना और साथ ही परिवार एवं बच्चों का पालन पोषण करना, ऐसी पत्नियों के लिए बहुत कठिन होता है।

संक्षेप में इस अवस्था की मुख्य विशेषताएं निम्नवत है

1. यह पुनरोत्पादक ;त्मचतवकनबजपअमद्ध अवधि होती है।
2. इस अवस्था में व्यवहार प्रतिमानों में स्थायित्व आ जाता है।
3. इसे“ समस्या आयु“ कहा जाता है। क्योकि इसमें समायोजन की समस्या बढ जाती है।

4. इसमें संवेगात्मक तनाव बढता है।
5. इस अवस्था में सामाजिक एकाकीपन बढता है क्योकि पूर्व की अवस्था के मित्रों से संबंध धीरे धीरे समाप्त होने लगते हैं।
6. इसमें सृजनशीलता में वृद्धि होती है।

1.6 पूर्व युवावस्था के विकासात्मक संकृत्यः-

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बच्चों एवं व्यक्तियों को अनेकानेक विकासात्मक कार्यों को सीखना पड़ता है। प्रत्येक समाज अपने सदस्यों, उनके आयु वर्गो के अनुरूप व्यवहार की प्रत्याशा करता है और इन प्रकार के कार्यो को विकासात्मक संकृत्य का नाम दिया है। पूर्व युवावस्था में विकासात्मक संकृत्य निम्नलिखित रूप से है-

1. **जीवन साथी का चयनः-** इस अवस्था का प्रारंभ प्र्रायः 18 वर्ष से ऊपर ही प्रारंभ होता है। स्वास्थ्य सामाजिक एवं विधिक रूप से यह निम्नतम वैवाहिक आयु होती है। यह अवस्था जीवन साथी का चयन करने के लिए बहुत उपयुक्त है। अतः विवाह कर पत्नी को घर लाना सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से व्यक्ति का दायित्व एवं कर्तव्य दोनों है।
2. **जीवन साथी के साथ रहनाः-** विवाह कर लायी गई पत्नी के साथ समय बिताना, उसके सुख दुख में उसका साथ देना, एक दूसरे की इच्छाओं का आदर करना, दोनों के बीच पारदर्शिता बनाये रखना आदि सभी दाम्पत्य जीवन के पवित्र व्यवहार हैं । इस अवस्था में पति पत्नी के बीच संवेदात्मक संबंध बना रहता है।
3. **परिवार का प्रारंभः-**सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से संतान की प्राप्ति आवश्यक होती है। किसी व्यक्ति का अपना वारिस भी होना आवश्यक है। इसमें भी संतान की उत्पत्ति आवश्यक है। युवावस्था का प्रारंभिक काल भी इसके लिए हर दृष्टिकोण से उपयुक्त है। संयुक्त परिवार की खुशी के लिए भी यह आवश्यक है।
4. **बच्चों का पालन पोषणः-** संतानोत्पत्ति से महत्वपूर्ण उनका पालन पोषण है। संयुक्त परिवार में रहते हुए जहाँ समायोजन की समस्या सदा बनी रहती है वहीं पर किसी भी दशा में बच्चों के पालन पोषण में कमी भी नहीं होनी चाहिए। बच्चे देश के भविष्य हैं एवं उन्हें एक अच्छा नागरिक बनाना भी मॉ -बाप की जिम्मेदारी होती है। अतः इस अवस्था में पालन पोषण भी एक विकासात्मक संकृत्य है।

5. **घर की व्यवस्था करना:-** परिवार के रहने के लिए समुचित आवास एवं गृहस्थी के सामानों की भी व्यवस्था करना आवश्यक होता है। आर्थिक स्थिति के अन्तर्गत इसकी व्यवस्था सुनिश्चित करना आवश्यक है।
6. **किसी व्यवसाय या धन्धे में लग जाना:-** हमे ज्ञात है कि पूर्व युवावस्था,उत्तरदायित्व निर्वहन की अवस्था होती है। ज्यों-ज्यों हमारी आवश्यकताऐं बढती हैं, उत्तरदायित्व का क्षेत्र भी बढता जाता है। आवश्यकताओं की आपूर्ति एवं उत्तरदायित्व निर्वहन सुनिश्चित करने के लिए अर्थिक स्थिति का सही होना भी आवश्यक हैं। इस उद्देश्य से किसी कार्य/व्यवसाय में नियोजित होना परमावश्यक है।
7. **नागरिक या सामाजिक उत्तरदायित्व:-** प्रत्येक व्यक्ति का अपने देश के लिए एवं उस समाज के लिए जिसमें वह रहता है के लिए कुछ भी कर्तव्य होते हैं । पारिवारिक जीवन को अच्छे ढंग से बिताते हुए राष्ट्र तथा समाज के हित के लिए भी कार्य करने का उत्तरदायित्व समझना चाहिए।
8. **अपने लिए अनुकूल समाजिक समूह का चयन:-** सुरक्षा एवं अपनी पहचान बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति किसी सामाजिक समूह का सदस्य बना रहे। अनुकूल सामाजिक समूह का चयन भी इस अवस्था का एक विकासात्मक संकृत्य है।

1.7 पूर्व युवावस्था में व्यक्तित्व एवं सामाजिक विकास

1.7.1 व्यक्तित्व विकास:- एरिक्सन 1963 द्वारा मनोसामाजिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। विश्लेषणवादी होते हुए भी इनका विचार था कि विकास में जैविक कारकों की अपेक्षा सामाजिक कारकों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है। फ्रायड की भॉति एरिक्सन का भी मत है कि विकास की किसी एक अवधि में बालक को जो अनुभव होता है वह आगामी विकास को भी प्रभावित करता है। एरिक्सन ने इदम की अपेक्षा अहम को विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण बताया है। वे यह मानते हैं कि समझ आ जाने पर व्यक्ति वास्तिकताओं की परख कर जीवन को संतुलित बना सकता है। उनके द्वारा पूर्व युवावस्था के अन्तर्गत "आत्मीयता बनाम पार्थक्य" मनोसामाजिक विशेषता को दृष्टिगत रखते हुए व्यक्तित्व विकास की व्याख्या निम्नवत की है:-

"आत्मीयता बनाम पार्थक्य(Affiliation V/S Isolation) " इस अवधि का प्रसार 19 से 35 वर्ष के आसपास तक माना गया है। इसमें मित्रता का प्रसार होता है। प्रतिस्पर्धा तथा सहयोग की भावना बढती है, लैगिकता का भी प्रभाव बढता है। इसके परिणामस्वरूप अन्य लोगों के प्रति संबंध एवं प्यार की भावना बलवती होती जाती है। इसके विपरीत निराशा असफलता , हीनता एवं द्वन्द होने पर

एकाकीपन की प्रवृत्ति बढती है। व्यक्ति अन्य लोगों से कटा कटा रहने लगता है और सामाजिक समायोजन तथा उपलब्धि का स्तर घटिया हो जाता है। ऐरिक्सन 1960 ने इसे पार्थक्य संकट का समय माना है क्योकि इसमें व्यक्ति नये सिरे से जीवन प्रारम्भ करता है।

1.7.2 सामाजिक विकास:- पूर्व युवावस्था में सामाजिक विकास उच्च स्तर तक हो जाता है। उत्तरदायित्वों का भार बढ जाता है। नवीन मूल्यों को सीखना, रचनात्मक कार्य करना, पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन, सन्तानोत्पति और सामाजिक प्रत्याशाओं को पुरा करना इस अवस्था के प्रमुख संकृत्य हैं। इसी कारण इसे समस्याओं की उम्र भी कहते हैं। इस अवस्था में भूमिका निर्वाह वे लोग अधिक सफलतापूर्वक करते हैं जो पूर्व की अवस्थाओं में अति संरक्षण में नहीं रहते हैं।

उत्पादकता बनाम निष्क्रियता (Productivity vs inaction)-पूर्व युवावस्था के अन्तिम समय से लेकर पूर्ण युवावस्था (उत्तर युवावस्था) में व्यक्ति समाज का एक सक्रिय सदस्य बन जाता है तथा इसकी भूमिकाएं काफी बढ जाती हैं। घरेलू उत्तरदायित्व, सामाजिक जिम्मेदारियॉ एवं व्यक्तिगत लक्ष्य, व्यक्ति को कार्य या उद्देश्य के प्रति तत्पर बनाते है। इस प्रकार उसकी क्षमता विभाजित हो जाती है। समाज व्यक्ति से अपेक्षा करता है कि वह अपनी भूमिकाओं का समुचित निर्वहन करके सामाजिक कल्याण में अपना योगदान देगा। इसके विपरीत निष्क्रियता या आत्मतन्मयता की प्रवृत्ति से ग्रस्त व्यक्ति उत्पादक या सृजनात्मक कार्यो में रूचि नहीं लेता है। यह योगदान देने के बजाय समूह या समाज पर बोझ बन जाता है।

आलोचना:-एरिक्सन का यह मत कि बालक के किसी एक अवधि का अनुभव या कमी आगामी विकास को भी प्रभावित करता है, उचित नहीं प्रतीत होता है क्योकि उचित परिस्थितियॉ उत्पन्न करके अतीत की कमियों को दूर किया जा सकता है। इसके बावजूद भी यह सिद्धान्त काफी आकर्षक है, तथा इसकी मान्यताओं का वैज्ञानिक स्तर पर परखने की आवश्यकता है।

1.7 सारांश:-

लगभग 18 से 40 वर्ष की आयु पूर्व युवावस्था की मानी जाती है। इस अवस्था में शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास उच्च स्तर तक हो जाता है। विशेष रूप से अपनी शिक्षा पूर्ण करके व्यवसाय में नियोजित होता है। इससे वह आर्थिक एवं सामाजिक एवं स्वावलंबी बनने का प्रयास करता है। नवीन मूल्यों को सीखना, रचनात्मक कार्य करना, जीविकोपार्जन एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन, संतानोत्पत्ति एवं सामाजिक प्रत्याशाओं को पूरा करना, इस अवस्था के प्रमुख संकृत्य है।

पूर्व युवावस्था में व्यक्ति का विकास पूर्ण आकार या ष्शक्ति तक हो जाता है। प्रोढ़ावस्था के प्रारंभिक काल में मंसपेशीय ष्शक्ति, संवेदी तीक्ष्णता, हृदय कार्य बढते है तत्पश्चात घटने लगते हैं। पुनरोत्पादकता, व्यवहार प्रतिमानों में स्थाइत्व, समायोजन, संवेगात्मक तनाव, सामाजिक एकाकीपन एवं सृजनशीलता आदि प्रारंभिक प्रौढावस्था की प्रमुख विशेषताऐं हैं। जीवन साथी का चयन, विवाहित जीवन निर्वहन, पारिवारिक भरण पोषण, बच्चों का पालन पोषण, घर की व्यवस्था, धन्धे में नियोजित होना, सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन एवं अनुकूल सामाजिक समूह का चयन करना आदि प्रारंभिक प्रौढ़ावस्था के मुख्य संकृत्य है।

एरिक्सन 1960 के अनुसार इस अवस्था को पार्थक्य- संकट का समय माना जाता है। क्योंकि इसमें व्यक्ति नये सिरे से जीवन प्रारंभ करता है। युवावस्था में समाज व्यक्ति से अपेक्षा करता है कि वह अपनी व्यक्तिगत भूमिकाओं के साथ सामाजिक कल्याण में भी अपना योगदान दे। इसके विपरीत निष्क्रियता या आत्मतन्मयता की प्र्रवृत्ति से ग्रस्त व्यक्ति उत्पादन या सृजनात्मक कार्यो में रूचि नहीं लेता है। इस व्यवहार को एरिक्सन ने अपने मनोसामाजिक सिद्धांत में ‘‘उत्पादकता बनाम निष्क्रियता ’’ कहा है।

1.9 शब्दावली:-

अविराम-बिना रूकावट के

सामाजस्य - तालमेल

उत्तरदायित्व- जिम्मेदारी

एकाकीपन - अकेलापन

स्वावलंबी-आत्मनिर्भर

संतानोत्पत्ति-संतान पैदा करना

अर्थोत्पादन धन कमाना-

पार्थक्य- अलगाव

समकक्ष- बराबर

निष्क्रियता - अकर्मण्यता या अक्रियाशीलता

1.10 अभ्यास प्रश्नः-

1. विकास एक ....चलने वाली प्रक्रिया है।
2. जीवन अवस्थाओं का विभाजन निर्पेक्ष नहीं ....है।
3. पूर्व युवावस्था....................का आभास कराती है।
4. पूर्व युवावस्था में विकास ....तक हो जाता है।
5. ....में पति पत्नी के बीच संवेगात्मक संबंध रहता है।
6. संयुक्त परिवार में ....करना पड़ता है।

7. पूर्व युवावस्था को ....कहा जाता है।
8. पूर्व युवावस्था में ....में वृद्धि होती है।
9. इस अवस्था में ....बढता है।
10. पूर्व युवावस्था में ....में स्थायित्व आ जाता है।
11. व्यक्तित्व विकास से संबंधित ....का प्रतिपादन ....द्वारा किया गया।

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:-

1. निरन्तर
2. समस्यओं की उम्र
3. सापेक्ष
4. सृजनशीलता
5. उत्तरदायित्व
6. सामाजिक एकाकीपन
7. उच्च स्तर तक
8. व्यवहार प्रतिमानों
9. प्रारंभिक प्रौढ़ावस्था
10. मनोसामाजिक सिद्धांत एरिक्सन
11. समायोजन

1.12 निबंधात्मक प्रश्न:-

1. पूर्व युवावस्था की विशेषताएं एवे विकासात्मक संकृत्य पर प्रकाश डालिए।
2. पूर्व युवावस्था एवं एरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।
3. पूर्व युवावस्था के विकास पर टिप्पणी लिखिए।

1.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. सिंह आर. एन. (2010-2011) आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान अग्रवाल पव्लिकेशन आगरा -2।
2. आलम के.जी. (1998) आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान मोती लाल बनारसी दास बंगलो रोड जवाहर नगर दिल्ली 110007।
3. इन्दुभूषण (2008) प्रारंभिक मनोविज्ञान (भाग -1) भारती भवन , पव्लिशर्स एण्ड डिस्टीव्युटर्स ठाकुरवाड़ी रोड ,कदमकुआं पटना।

इकाई.2 **युवावस्था रुचि में परिवर्तन, व्यक्तिगत एवं सामाजिक उलझनें (Change in interest, Personal and Social Conflicts in Adulthood)**

इकाई की रूपरेखा

2.1. प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3. रूचि की परिभाषायें

2.3.1. रूचि के विशेषताएं

2.3.2. रूचि के प्रकार

2.3.3. रूचि के प्रारूप

2.4 रूचि के परिवर्तन

2.4.1. रूचियों में परिवर्तन के कारण

2.5 युवावस्था में मनोरंजन

2.5.1. वैयक्तिक रूचियां

2.5.2. वैयक्तिक रूचियों को प्रभावित करने वाले कारक

2.6. मनोरंजन संबंधी रूचियां

2.6.1. प्रौढ़ों के मनोरंजन संबंधी क्रियाओं के प्रभवित करने वाले कारक

2.7 नव युवावस्था में मनोरंजन संबंधी रूचियाँ

2.8 सामाजिक रूचियाँ

2.9 सामाजिक गतिशीलता

2.10 लैंगिक भूमिकाओं के प्रति समायोजन

2.11. नैतिकता में परिवर्तन

2.12 नव युवावस्था को वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्यायें

2.13. सारांश

2.14. संदर्भ सूची

2.1 प्रस्तावना

मानव स्वभाव में रूचियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि एक व्यक्ति क्या कार्य करेगा और कैसे करेगा उसकी रूचि द्वारा निर्धारित होता है। अथवा उस व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं द्वारा निर्धारित होता है। जैसे- तीन व्यक्ति किसी पहाड़ी स्थान पर धूमने गये। जिसमें एक भूगर्भवेत्ता, वनस्पति विज्ञानी एवं एक व्यक्ति कवि था, तीनों ने पहाड़ पर अलग-अलग कार्य किये भूगर्भवेत्ता ने मिट्टी व चट्टानों का अध्ययन किया, वनस्पति विज्ञानी ने पेड़-पौधों का अध्ययन, किया तथा कवि ने उस रमणीक स्थान का सौंदर्य का अवलोकन किया। रमणीक पहाड़ी पर संबंध उनकी रूचियों के अनुसार बना। इस प्रकार हम कह सकते है। कि रूचि व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं द्वारा निर्धारित होते हैं। रूचि के संदर्भ में विस्तार से जानने के लिए आवश्यक है। कि उसकी परिभाषाओं एवं उद्देश्यों के बारे में जाने-

2.2 उद्देश्य

रूचि एक प्रेरक शक्ति है जो व्यक्तित्व के विकास का प्रमुख स्तम्भ होता है। रूचियाँ जन्मजात एवं अर्जित दोनों प्रकार की होती है। जन्म से लेकर प्रौढावस्था तथा वृद्धावस्था तक रूचियाँ परिवर्तित होती रहती। प्रस्तुत इकाई के निम्न उद्देश्य है-

- इस इकाई में हम रूचि एंव उसकी परिभाषाओं के बारे में जान जायेंगे चूंकि रूचियाँ परिवर्तित होती रहती है। अतः इस इकाई मे हम नव प्रौढावस्था मे रूचियों में परिवर्तन तथा उसके कारणों पर चर्चा करेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में हम यह जान पायेगें कि सामाजिक रूचियॉ, सामाजिक गतिशीलता तथा यौन भूमिकाओं में समायोजन प्रारम्भिक प्रौढावस्था को कितना प्रभावित करती हैं साथ ही प्रारम्भिक प्रौढावस्था के वैयक्तिक एवं सामाजिक खतरों से रूबरू होंगे।

2.3 रूचि की परिभाषाएं:

रूचि वह प्रवृत्ति है जिससे हम किसी व्यक्ति वस्तु या क्रिया की ओर ध्यान देते है, उससे आकर्षित होते है या संतुष्टि प्राप्त करते है। J.P. Guilford 1964

आइजैंक के अनुसार “रूचि व्यवहार की वह प्रवृत्ति है जो कुछ वस्तुओं क्रियाओं या अनुभवों के प्रति कार्य कर सकने में समर्थ होती है। यह प्रवृत्ति (और सामान्यीकरण) में व्यक्ति से व्यक्ति में परिवर्तित होती रहती है।“ **(According to Eysenket (1972) “an interest is a tendency to behaviors**

oriented toward certain objects, activities or experience, which varies in intensity and generality from individual to individual")

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते है कि रूचि एक प्रेरक शक्ति है जो हमारे ध्यान एवं शक्ति को क्रिया या वस्तु की तरफ उन्मुख करता है।

2.3.1 रूचि की विशेषताये:-

- रूचि व्यक्तित्व का एक अंग है।
- रूचि वंशानुक्रम तथा वातावरण से प्रभावित होती है।
- रूचि अपने में ही एक गत्यात्मक वृत्रि है।
- रूचि प्रेरणाओं एवं संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं से दृढ़तापूर्वक सम्बन्धित रहती है।
- रूचि में ध्यान का समावेष निहित होता है।
- रूचियां योग्यता से भी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती है।
- रूचियों में स्थायित्व व परिवर्तनशीलता दोनो ही पाई जाती है।

2.3.2 रूचि के प्रकार (Type_of_Interest) विद्वानों ने रूचि को दो भागों में बॉटा है।

1. **जन्मजात रूचि**:- जन्मजात रूचियाँ मूल प्रवृत्तियों पर आधारित होती है। इनको व्यक्ति की आवश्यकताओं के साथ भी जोड़ा जाता है। जब व्यक्ति मूल प्रवृत्तियों से सम्बन्धित व्यवहारों में अपनी रूचि प्रकट करता है तो उसे जन्मजात रूचि माना जाता है।।
2. **अर्जित रूचि**:- अर्जित रूचि सीखी हुई प्रवृत्तियॉ हैं। जब व्यक्ति के अन्दर किसी वस्तु विचार या व्यक्ति के प्रति भाव संवदेन उत्पन्न होता है तो वह उसके प्रति प्रतिक्रिया करता है एवं जो धीरे-धीरे रूचि में परिवर्तित हो जाती है। अध्ययनों से स्पष्ट हो चुका है कि साहित्य, कला, खेल सामाजिक कार्यो में बढ़ चढ़ कर भागीदारी कर बढ़ने वाले महान व्यक्तियों कें व्यक्तित्व पर परिवेश का ज्यादा प्रभाव पड़ा है।

2.3.3 रूचि के प्रारूप

रूचि के साहित्य का अध्ययन् करने पर हम रूचि के निम्न चार प्रारूप का उल्लेख पाते हैं-

A. **प्रदर्शित रूचि (Manifest_Interest)** कुछ रूचियाँ ऐसी होती है जिन्हे व्यक्ति अपने शब्दों में व्यक्त न करके व्यवहार से व्यक्त करता है, जैसे- जो व्यक्ति क्रिकेट के शौकीन होते है वो जहॉ

भी मैच चल रहा हो या टी0वी0 में प्रसारित हो रहा हो तो उसे देखने से नही चूकते हैं। ये रूचियां अत्यधिक विश्वसनीय होती हैं।

B. **अभिव्यक्त रूचि (Expression_Interest)** जिन रूचियों को व्यक्ति शब्दों के रूप में व्यक्त करता है या जिनका ज्ञान हम पूछ कर करते है वो अभिव्यक्त रूचियाँ कहलाती हैं। जैसे-क्या आपकी साहित्य में रूचि है? या आप किस प्रकार के संगीत में रूचि रखते है आदि।

C. **अनुसूचि द्वारा ज्ञात रूचि(Inventoried_Interest)** ये वो रूचियां है जो विभिन्न रूचि प्रपत्रों द्वारा परीक्षण कर ज्ञात की जाती हैं तथा जिनका मानकीकरण संभव हो।

D. **परीक्षित रूचि (Tested_Interest)** यदि किसी व्यक्ति का किसी विषय में ज्ञान या उस ज्ञान की उपलब्धि के प्राप्तांक समान हों तो कहा जाता है कि व्यक्ति उस ज्ञान की प्राप्ति में रूचि रखता है। इसका माप विभिन्न निष्पत्ति परीक्षणों (Achievement Test) द्वारा किया जाता है।

2.4 रूचि में परिवर्तन (Change in Interest)

रूचि की परिभाषा उद्देश्य व प्रकारों को जानने के बाद प्रमुख प्रश्न यह उठता है कि क्या रूचि में परिवर्तन होता है? कुछ रूचियाँ की स्थायी प्रकृति होती है और कुछ अस्थायी। रूचियाँ चाहे स्थायी हो अथवा अस्थायी रूचियाँ परिवर्तित हो जाती है। रूचियों का अधिगम और परिवर्तन आयु के साथ-साथ होता रहता है। M.E. Tulton (1955) ने रूचियों में परिवर्तन के सन्दर्भ में एक अध्ययन किया जिसमे 311 छात्र-छात्राओं को शामिल किया गया। इस अध्ययन् में यह देखा गया कि आठवीं से नवी कक्षा में तथा ग्यारहवीं से बारहवीं कक्षा में रूचियों में परिवर्तन कितना होता है। अध्ययन के पश्चात् यह निश्कर्ष निकाला गया कि 35 रूचियाँ परिवर्तित हो जाती है।

जैसे-जैसे व्यक्ति में परिपक्वता का विकास होने लगता है, उसकी जिम्मेदारियों एवं रूचियों में भी परिवर्तन दिखाई देता है। जहाँ बाल्यावस्था रूचियाँ सीमित रहती है तो वही किशोरावस्था तेजी से हो रहे शारीरिक व मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के कारण रूचियों में भी तेजी से परिवर्तन होता है। परन्तु जैसे ही 18-40 वर्ष यानि की नव् प्रौढावस्था की उम्र आती है व्यक्ति में परिपक्वता आने लगती है। वह कैरियर के साथ परिवार की जिम्मेदारियों को भी सम्भालने लगता है। जीवन में उसकी प्राथमिकताओं में कैरियर, परिवार, विवाह, बच्चे आदि जिम्मेदारियॉ शामिल होने लगती है। वैयक्तिक रूप से इन जिम्मेदारियों के लिए वातावरण का निर्माण समाज करने लगता है और मनोवैज्ञानिक रूप से व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है कि समाज उससे अपनी जिम्मेदारियो को समझने की अपेक्षा करता है। अतः उसकी वैयक्तिक एवं सामाजिक रूचियों में परिवर्तन होने लगता है। यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि रूचियाँ व्यक्ति एवं उसके पर्यावरण की अन्तःक्रिया के फलस्वरूप विकसित होती हैं। साथ ही यह जानना भी आवश्यक हो जाता है कि वो कौन सी परिस्थितियाँ है जिनके कारण प्रारम्भिक प्रौढावस्था में रूचियों में परिवर्तन देखने को मिलता है।

2.4.1 नव प्रौढावस्था में रूचियों में परिवर्तन के कारणः- नव प्रौढावस्था यानि 18 से 40 वर्ष के मध्य की आयु को समस्यात्मक आयु के रूप में भी जाना जाता है। इस उम्र में जहाँ व्यक्ति में परिपक्वता आने लगती है तो वहीं उसे बहुत सी जिम्मेदारियों का सामना भी करना पड़ता है। इन जिम्मेदारियों के कारण अथवा विभिन्न परिस्थितियों में उसके समायोजन का कारण भी व्यक्ति में रूचि परिवर्तन होते देखा गया है। यद्यपि रूचि परिवर्तन के निम्न कारण हैः-

- **आर्थिक रहन-सहन में परिवर्तन <u>(Change in Economic Status)</u>** मनोवैज्ञानिक ये मानते हैं कि युवावस्था में अगर व्यक्ति का आर्थिक रहन सहन बेहतर होता है तो व्यक्ति की रूचियों का विस्तार हो जाता है क्योंकि वह अपनी रूचियों को पूर्ण करने के लिए संसाधनों को जुटा सकता है। इसके विपरीत अगर आर्थिक रूप से कमजोर होता है तो परिवार की जिम्मेदारियाँ को निभाने के लिए भी उसे अपनी इच्छाओं का दमन करना पड़ता है।
- **जीवन शैली में परिवर्तन <u>(Change in Life Patterns)</u>** प्रारम्भिक प्रौढावस्था में व्यक्ति यदि अपने पुरानी रूचियों को पूर्ण करने के लिए समय ऊर्जा एवं पैसो का उपयोग करता है तो उसकी जीवन शैली एवं व्यक्तित्व दोनो में परिवर्तन आने लगता है।
- **मूल्यों में परिवर्तन <u>(Change in Values)</u>** प्रारम्भिक प्रौढावस्था में व्यक्ति अपने कैरियर व्यवसाय एवं शिक्षा के लिए विभिन्न स्थानों में जाता है। नये लोगों से मिलना व नये मूल्यों का निर्माण/अधिकांशत देखा गया कि नये मूल्यों के साथ नई रूचियों का भी विकास होता है।
- **यौन भूमिका में परिवर्तन <u>(Sex Role Change</u>)** रूचिं परिवतन में यौन भूमिका महत्वपूर्ण होती है। जब एक युवा स्त्री व पुरूश अलग रहते हैं तो उनकी यौन रूचियाँ, व्यवहार मूल्य अलग-अलग होते है। साथ रहने अथवा विवाहित होने पर वो एक दूसरे की रूचियो व मूल्यों से परिचित होते है तथा उसी के अनुसार अपनी रूचियों में परिवर्तन करने लगते हैं।
- सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय दबाबों के कारण रूचियो में परिवर्तन **<u>(Interest Changes due to cultural and environmental pressures)</u>** मनौवैज्ञानिक मानते है कि प्रत्येक उम्र में सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय दबाबों का प्रभाव पड़ता है। दबाबो से कई बार समाज अथवा समूह के मूल्यों में परिवर्तन आ जाता है जो सम्पूर्ण समाज के अभिरूचियों में परिवर्तन कर देते है। जैसे-अग्रेंजो भारत छोड़ो के नारे के साथ स्वतन्त्रता आन्दोलन में बहुत से युवाओं, बच्चों महिलाओं से बुजुर्गो ने बदलते सांस्कृतिक परिवेष एवं पर्यावरणीय प्रतिबल के साथ स्वंय को जोड़ा तथा अपने मूल्यों एवं अभिरूचियों को सामाजिक परिवर्तन की धारा में बदलकर भारत को स्वतंत्र कराने में अग्रणी भूमिका निभाई। इस प्रकार सांस्कृतिक व सामाजिक दबाब भी रूचियों के परिवर्तन में अग्रणी भूमिका निभाते हैं।

2.5 नव प्रौढावस्था में मनोंरजन (Recreation in Early Adulthood)

रूचियों में परिवर्तन का समय विषेशकर किशोरावस्था में ही होता है क्योंकि इस अवस्था में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन तीव्र गति से होते हैं जबकि प्रौढावस्था में यह परिवर्तन धीमी गति से होते है। इसलिए रूचियों में भी परिवर्तन कम होता है। स्ट्रांग (1958) ने इस संदर्भ में अपने विचार रखते हुए कहा है कि **''एक व्यक्ति जो 25 वर्ष का प्रौढ़ होता है उसकी रूचियॉ पूरे जीवन काल तक समान रहती है। 20 वर्ष तक नव प्रौढ़ ऐसी रूचियॉ विकसित कर लेता है जो कि जीवन भर उसके साथ रहती हैं।''**

प्रौढावस्था में रूचियों में परिवर्तन की जगह रूचियों में संकीर्णातापन आती है। प्रौढ अपने रूचियों के विस्तारीकरण की जगह पर स्थिरीकरण चाहता है। इसलिए वो प्रारम्भिक प्रौढावस्था में कम रूचियाँ रखते हैं आगे चलकर जैसे-जैसे उनके कर्तव्य एवं जिम्मेदारी में परिवर्तन होता है तो वो मात्र अपनी रूचियों को नई भूमिकाओं के अनुरूप समायोजित करने का प्रयास करते हैं। अधिकांशतः व्यक्ति अपने वातावरण मे परिवर्तन के फलस्वरूप नई रूचियों को जन्म देते हैं तथा इसके लिए उन्हें नया अवसर प्रदान होता है। नव प्रौढावस्था का रूचियों का विस्तार विस्तृत होता है। नव वयस्क के लिए कुछ निश्चित रूचियाँ प्रर्दशित होती हैं इन रूचियों को तीन वर्गो में विभक्त किया जा सकता हैः-

1. व्यक्तिगत रूचियाँ
2. मनोंरजन की रूचियाँ
3. सामाजिक रूचियाँ

2.5.1 व्यक्तिगत रूचियाँ (Personal Interest)

व्यक्तिगत रूचियाँ प्रौढ़ के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित होती हैं प्रारम्भिक प्रौढावस्था में भी प्रौढ़ किशोरावस्था की तरह आत्मकेन्द्रित तथा अहम् केन्द्रित होता है। जैसे-जैसे काम, गृह एवं पैतृक जिम्मेदारियों में वृद्धि होती है वैसे ही आत्म केन्द्रित रूचियों में परिवर्तन होने लगता है और ये रूचियाँ सामाजिक रूचियों को एक रास्ता प्रदान करती हैं।

2.5.2 व्यक्तिगत रूचियों को प्रभावित करने वाले कारक

a) **आकृति या रूप** (**Appearance**) इस अवस्था में प्रौढ़ अपने हाव-भाव तथा शारीरिक संरचना के प्रति रूचि रखते हैं, आकर्षक बनना चाहते हैं, सुन्दरता को पसन्द करते हैं साथ ही वे ये भीसमझते हैं कि आकर्षणता सामाजिक सम्बन्धों की एक निधी है तथा अनाकर्षणता सामाजिक सम्बन्धों पर भार स्वरूप होता है। इसलिए ये शारीरिक आकर्षक पर विशेष बल देते हैं इससे आत्म गौरव तथा आत्म सम्मान की भावना विकसित होती है। इस सम्बन्ध में मैथ्यूज तथा खान (1975) लिखते है-"In the social exchange, physical attractiveness is a

positive input and can be used to obtain a variety of good outcomes for its possessors. One of the most frequently obtained outcomes in liking. Attractive people are like more as friend ….and receive more positive evaluations from other…and empathy… than unattractive people …as a result of the many good outcomes obtained by attractive people it seem likely that they are happier and better adjusted than unattractive people. It is also probable that the liking received from others is reflected in a high self esteem."

सामान्य तौर पर महिलाओं के विषय मे यह समझा जाता है कि शारीरिक आकर्षण उनकी जिंदगी और रहन-सहन को बहुत प्रभावित करता है। आज भी हमारी संस्कृति में महिलाओं की सुन्दरता एंव आकषर्ण को उसकी बुद्धि एवं शिक्षा से ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाता है। उनकी शादी एवं व्यवसाय के लिए, परन्तु समय के साथ-साथ रूढ़िगत सामाजिक परम्पराओं मे भी बदलाव देखने को मिल रहा है। आज महिलाओं का सुन्दर व आकर्षित होने की अपेक्षा आत्मविश्वासी शिक्षित होना, समाज को ज्यादा भा रहा है। मध्यम प्रौढावस्था तक धीरे-धीरे आकर्षित रूप का उत्साह कम होने लगता है।

b) **कपड़े एवं व्यक्तिगत श्रृंगार** (**C**loth **&** Personal Adornment). नव प्रौढावस्था में पहनावा एवं साज-सजावट की चीजों में बहुत रूचि देखी जाती है। वो समझते हैं कि आकर्षण सफलता की ओर बढ़ने की एक सीढ़ी है। नव वयस्क प्रारम्भिक प्रौढावस्था में कपड़ों को छाँटने एवं साज सज्जा के समान में अधिक समय एवं अत्यधिक धनराषि खर्च करते हैं। Bickman ने लिखा है कि "Clothes may seem to be superficial qualities, but important determinants of one person's reaction to another."

c) **परिपक्वता की निशानी** **(Symbols of Maturity)** बहुत से नव प्रौढ़ ये सोचते हैं कि वो अपने माता पिता को दिखा सकें कि वे अब किशोर नही है। बल्कि एकदम बड़े एवं परिपक्व हो गये हैं वो अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाने लगते है। धनोपार्जन के प्रति वो काफी उत्सुक रहते हैं और जानते हैं कि रूपया कैसे खर्च करना चाहिये, वो धन के माध्यम से समाजिक स्तर को बढ़ाना चाहते हैं। उनकी धार्मिक रूचियाँ भी होती हैं। अधिकांशतः प्रौढ़ माता पिता बनने के पश्चात् यह समझते हैं कि बच्चों को नयी नैतिक रूचियाँ एवं मूल्य विकसित करने के लिये धर्म का सहारा लेना चाहिये। इस प्रकार अपने कर्मो के द्वारा नव प्रौढ़ अपने दायित्वों एवं रूचियों का निर्वाहन करते हैं।

2.6. मनोरंजन सम्बन्धी रूचियाँ

मनोरंजन एक ऐसी विधा है जिसके द्वारा व्यक्ति स्वंय को तरोताजा महसूस करता है, उसका तनाव कम होता है और ऊर्जा बरकरार रहती है। नव प्रौढ़ की मनोरंजन सम्बन्धी रूचियाँ जो अभी तक किशोरावस्था में होती है उनमें परिवर्तन होता है। ज्यादातर प्रौढ़ आराम की जिंदगी जीना पसन्द करते है तो वही कुछ इस बात से परेशान रहते हैं कि खाली समय का प्रयोग कैसे करें। अमेरिकन संस्कृति में छोटा सप्ताह होने के कारण उन्हें भरपूर खाली समय मिलता है तो वहाँ उसका भरपूर उपयोग किया जाता है। वे इसके लिये सप्ताहांत पार्टियाँ रखते हैं, पिकनिक पर जाते हैं, सैर पर निकलते हैं, खेलों मे अपने को व्यस्त रखते है। इन सबके बाबजूद ज्यादातर प्रौढ़ अपनी मनोरंजन सम्बन्धी क्रियाओं से सन्तुष्ट नहीं होते हैं। कई बार उन्हें समायोजन की समस्या से भी गुजरना पड़ता है। इस प्रकार नव प्रौढ़ के मनोंरजन को प्रमाणित करने वाले बहुत से कारक हैं।

2.6.1 प्रौढ़ों के मनोंरजन सम्बन्धी क्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारक (Factor Influencing Adult Recreation)

- **स्वास्थ्य**-स्वास्थ्य मनोरंजन को काफी हद तक प्रभावित करता है। अच्छा स्वास्थ्य व्यक्ति को उत्साही, स्फूर्तिदायक बनाये रहता है, ऐसे व्यक्ति मंनोरंजन के विभिन्न आयामा ढूढ लेते हैं जबकि स्वास्थ्य से कमजोर व्यक्ति मनोरंजन की तरफ ज्यादा आकर्षित नही होता है।
- **समय**-प्रारम्भिक प्रौढावस्था में कैरियर व्यवसाय व विवाह आदि अन्य जिम्मेदारियों के बढ़ने के कारण मनोरंजन को प्रौढ़ उतना समय नही दे पाते हैं जितना किशोरावस्था में देते थे।
- **वैवाहिक स्तर**- कुछ अध्ययनों के अनुसार विवाहित पुरूष एवं महिला की अपेक्षा अविवाहित स्त्री एवं पुरुष ज्यादा पैसा भिन्न-भिन्न मंनोरंजन में खर्च करते हैं तथा ज्यादातर समय बाहर व्यतीत करते हैं जबकि विवाहित जोड़े घर में ज्यादा व्यतीत करते हैं वो पार्टी, टी.वी. व कार्ड आदि खेलने में अपना समय व्यतीत करना पसन्द करते हैं। इसी के साथ विवाह के पश्चात् विवाहित जोड़े की भूमिका बदल जाती है। महिलायें अपना ध्यान बच्चों व परिवार पर लगाती हैं तो पुरूष पिता बन कर बच्चों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस प्रकार अपनी भूमिकाओं के अनुसार उनके मनोरंजनों में भी परिवर्तन आने लगता है।
- **सामाजिक अपेक्षायें**-अधिकांशतः यह देखा जाता है कि जो बच्चे अपने स्कूल, कालेज, व्यवसाय व नौकरी में ज्यादा मित्र बनाते हैं, वे ज्यादा प्रसिद्व होते है एवं उन्हें सामाजिक स्वीकृति ज्यादा मिलती है। इस सन्दर्भ में कैली (1973) ओधनर (1975) तथा विलियम (1977) ने कहा है कि ''मनोरंजन सम्बन्धी क्रियाओं के साथ समायोजन समस्या के कई कारण होते है। प्रौढ़ लोग जब स्कूल या कॉलेज कि अवस्था में थे तो उन्हे कई प्रकार कि मनोरंजन

सम्बन्धी सामग्री तैयार मिलती थी। उनके पास कई मित्र होते थे जिनसे वो मनोरंजन सम्बंधित क्रियाओं हेतु सहयोगी बनाने का प्रयास करते थे। उनके माता-पिता, शिक्षक उन्हें मनोरंजन सम्बन्धी क्रियाओं हेतु प्रोत्साहित करते थे जिससे समस्या कम होती थी। साथ ही विद्यालय तथा कॉलेज में इस बात का प्रशिक्षण दिया जाता था कि खाली समय का कैसे उपयोग करना चाहिए। प्रारम्भिक प्रौढावस्था में जो मनोरंजन सम्बन्धी रूचियाँ प्रदर्शित होती हैं वो प्रायः घर एवं पड़ोस तक केन्द्रित होती हैं। उदारणार्थ-जब उनके बच्चे छोटे होते हैं तो ज्यादात्तर प्रौढ़ का मनोंरजन का क्रेन्द्र उनके बच्चे होते हैं। जब बच्चे किशोरावस्था में होते हैं तो प्रौढ़ का मनोरंजन का केन्द्र उनका परिवार होता है।

2.7 प्रारम्भिक प्रौढावस्था में मनोरंजन सम्बन्धी रूचियाँ-

- **वार्तालापः-**वार्तालाप की रूचियॉ प्रायःउन्हीं में होती हैं जो समान रूचि रखते हैं। जो महिलायें केवल पारिवारिक दायित्व निभाती हैं उनमे वार्तालाप व गपशप ज्यादा देखने को मिलता है। जबकि पुरूष हँसी-मजाक करना व राजनैतिक चर्चा करना ज्यादा पसन्द करते है। इस प्रकार वार्तालाप मनोरंजन का प्रमुख साधन है।
- **नृत्य/संगीतः**-नृत्य का शौक भी प्रायः महिलाओं को होता है। सामान्यतः 20-30 वर्ष की अवस्था में नृत्य करना ज्यादा पसन्द किया जाता है। वर्तमान समय में नृत्य स्त्री व पुरूषों दोनों में देखा जाने लगा है। नृत्य व्यायाम का एक प्रमुख आधार भी है और तनाव से मुक्ति का एक साधन भी। इसी के साथ संगीत में रूचि रखना व संगीत सुनना भी नयी पीढी में अधिकतर देखा गया है।
- **खेलकूदः-**प्रांरम्भिक प्रौढावस्था में खेल कूद में कमी देखी जाती है। प्रौढ़ अपने घर तक ही सीमित हो जाता है। इसका कारण रूचि का कम होना नही वरन् उनके पास खेल-कूद का पर्याप्त समय नही होता है। खेल कूद में सहभागी बनने में उस समय कमी आती है।
- **टी0 वी0:**-नये प्रौढ़ों को जब भी समय मिलता है वे अपना ज्यादातर समय टेलीवीजन देखने में गुजारते हैं। वो फिल्म, समाचार व खेलों में समय गुजारना पसन्द करते हैं, इस उम्र में इनकी रूचि टी0 वी0 की तरफ अधिक देखने को मिलती है।
- **कम्प्यूटर/नेटः-**वर्तमान समय कम्प्यूटर का युग है। नेट के द्वारा व्यक्ति पूरी दुनिया की खबरें रखता है। प्रारम्भिक प्रौढावस्था में कम्प्यूटर व सोशल नेटवकिग में युवा प्रौढ़ ज्यादा व्यस्त दिखाई देते हैं। वे अपने मित्रों व परिचितों से सोशल साईट्स के द्वारा संपर्क में रहते हैं।

उपरोक्त मनोरंजन सम्बन्धी रूचियों के अतिरिक्त वो अन्य रचनात्मक कार्यों लेखन, गार्डनिंग, पेन्टिंग, सिलाई आदि में अपने आप को व्यस्त रखते हैं।

2.8 **सामाजिक रूचियाँ (**Social Interest)

एरिक्सन (1968) ने बताया है कि प्रारम्भिक प्रौढावस्था में महिलाओं तथा पुरुषों में सामाजिक अलगाव की अवधि होती है। इस अवधि में सामाजिक सहभागिता में कमी देखी जाती है। प्रौढ अपने घर तक ही सीमित हो जाते हैं। वह सामाजिक उत्सवों एवं सामाजिक कार्यों के लिए भी कम समय निकाल पाते है। प्रौढ़ का समाज उसका परिवार ही हो जाता है तथा पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करता है। उसकी मित्रता में परिवर्तन देखने को मिलता है। इस अवस्था में वो अपने किशोरवस्था के मित्रों के साथ सम्बन्ध बनाये रखते हैं परन्तु इस किशोरावस्था की मित्रता में कोई विस्तार नही होता है। इस अवस्था में मित्रता में चयनात्मकता होती है। चयनात्मकता के कारण मित्रों की संख्या में कमी होती है। मित्रों के चयन का आधार मुख्यतः रूचियाँ एवं उसकी विशेषताएँ होती हैं इसलिए नव प्रौढ़ कम एवं घनिष्ठ मित्र रखते हैं। सामाजिक भूमिकाओं के बदल जाने के कारण सामाजिक समूह में भी परिवर्तन होता है।

इस अवस्था में विश्वसनीय तथा घनिष्ठ मित्रों का छोटा समूह होता है। उनके मित्रों की संख्या क्या होगी वह इस बात पर निर्भर करता है कि प्रौढ़ अपनी समस्याओं, रूचियों और इच्छाओं को किस प्रकार ओर कितना साझा करता है या करना चाहता है। 30-40 वर्ष की आयु में ज्यादातर प्रौढ़ अपनी एक मित्रमण्डली बना लेते है और उसी से अपनी समस्याएँ, इच्छाएँ तथा रूचियों पर बातचीत करते हैं। इस अवस्था में नेतृत्व में भी परिवर्तन देखने को मिलते है। प्रौढ़ नेता की जो आवश्यक महत्वपूर्ण विशेषताएँ होनी चाहिए, वे निम्नलिखित हैं-

- नेता का उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर होना चाहिए।
- उच्च स्तर की शिक्षा होनी चाहिए।
- यथार्थ आत्मसम्प्रत्यय होना चाहिए।
- वास्तविक लक्ष्य होना चाहिए।
- कुण्ठा को शमन करने की उच्च क्षमता होनी चाहिए।
- सफलता और असफलता को सुन्दर ढंग से स्वीकार करने की योग्यता होनी चाहिए।
- दूसरे के साथ बातचीत करने की इच्छा एवं योग्यता होनी चाहिए।
- समूह के साथ कार्य करने की योग्यता होनी चाहिए।

इस तरह यदि देखा जाये तो प्रारम्भिक प्रौढावस्था में उच्च स्तर के परिवर्तन रूचियों में देखे जाते है। इस अवस्था में पार्टियों तथा उत्सवों में भाग लेने में कमी आती है। नशीले पढार्थो का सेवन करते है।

सांसारिक घटनाओ के स्थान पर घरेलू घटनाओं पर ज्यादा समय रखते हैं, आलोचना तथा सुधार सम्बन्धी आदतें भी देखी जाती हैं।

2.9 सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility)

गतिशीलता नव प्रौढ़ के जीवन का एक अह्म हिस्सा है। यह दो प्रकार की होती हैः-

1. **भौगोलिक:** भौगोलिक गतिशीलता को एक जगह से दूसरी जगह जाना तक जाने के रूप में लिया जा सकता है। यह सामाजिक कारणों से कम व व्यवसायिक कारनों से ज्यादा होता है।
2. **सामाजिक:** एक सामाजिक समूह से दूसरे सामाजिक समूह में जाना सामाजिक गतिशीलता कहलाता है जिसके मुख्यता दो प्रकार होते है। पहला जब सामान वर्ग हो जिसमें व्यक्ति एक सामाजिक समूह से दूसरे समूह में जा रहा हो वही दूसरा जब व्यक्ति एक सामाजिक समूह से ऊपर या नीचे वर्ग के समूह में जाता है।

ज्यादातर प्रौढ़ अपने वर्ग से ऊपर वाले वर्ग में जाना ज्यादा पसन्द करते हैं। कुछ प्रौढ ऐसे भी होते हैं जो समान वर्ग में ही गमन करने में सन्तुष्ट रहते हैं, और नहीं के बराबर ही प्रौढ़ निचले वर्ग की तरफ गतिषील होते है। अमेरिका में नव प्रौढों का एक वर्ग ऐसा है जो यह सपना देखता है कि वह शिक्षा सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में बेहतर हो। अर्थात् नव प्रौढ़ो का सपना होता है कि वह सामाजिक सीढियाँ चढ़ते जायें।सामान्य तौर पर प्रौढ़ अपनी सीढ़िया खुद चढ़ते हैं इसके लिए वो निरन्तर प्रयास करते हैं।

उपरोक्त तथ्यों के साथ यह कहना समीचीन होगा कि सामाजिक गतिशीलता किशोरावस्था की अपेक्षा प्रौढावस्था में कम होती है। क्योंकि व्यक्ति को पारिवारिक दायित्यवो के साथ तमाम सामाजिक व आर्थिक दायित्वों का निर्वहन करना पड़ता है।

2.10 लैंगिक भूमिकाओं के प्रति समायोजन (Sex, Role Adjustment)

इस अवस्था में अधिकांषतः प्रौढ़ विवाह के सूत्र में बँध जाते हैं। वे इस विवाह का आनन्द उठाते हैं। उनका व्यवहार लिंग सम्मत होता है। किशोरावस्था की ही तरह वे भी एक-दूसरे के प्रति काफी आकर्षित रहते हैं। Saxton (1972) का निष्कर्ष है कि प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में भी लैंगिक सम्बन्ध एवं लैंगिक निष्पादन महत्वपूर्ण तरीके से जारी रहता है। संभोग करना प्रारम्भिक प्रौढावस्था का एक अधिकार बन जाता है।

शादी के बाद पुरूष तथा महिलाएँ संभोग में काफी रूचि रखते हैं तथा अपना कर्त्तव्य भी समझते हैं। शादी के प्रथम वर्षों में संभोग ज्यादा होता है। संभोग से केवल आन्नद ही नहीं मिलता है। बल्कि एक दूसरे के प्रति प्यार एवं लगाव की सीमा में भी वृद्धि होती है। Lobesenz (1974) ने अपने सर्वेक्षण

संभोग सांवेगिक लगाव के लिए महत्वपूर्ण होता है। प्रारम्भिक प्रौढावस्था में लैंगिक रूचियाँ एवं लैंगिक व्यवहार अधिक प्रदर्शित होता है। इस अवस्था में लैंगिक भूमिकाओं के प्रति समायोजन करना पूर्णतः कठिन कार्य होता है। इसका कारण यह होता है कि ज्यादातर किशोरियां इस अवस्था में पत्नी और माँ की भूमिका निभाने लगती है। अधिकांशतः घर की सम्पूर्ण जिम्मेदारी उनके ऊपर आ जाती है। इसलिए पत्नियों को गृहलक्ष्मी या गृहनिर्मात्री का नाम दिया जाता है।परम्परागत रूप से घर सँभालना उन्हीं का कार्य होता है। पति घर के बाहर का कार्य सँभालता है। साथ-ही-साथ पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति भी करता है। वर्तमान समय में लिंग आधारित भूमिका में परिवर्तन हो रहा है। महिला व पुरुष दोनो बाहर कार्य करते है और कुछ पति घर के कार्यों में मदद भी करते है। परन्तु इन सब के पश्चात भी महिलाओं को अधिक श्रम (घर व बाहर) दोनों करने पड़ते हैं। जिसमें समायोजन करने में समस्या आती है।

2.11 नैतिकता में परिवर्तन (Changes in Morality)-

चूँकि प्रारम्भिक प्रौढावस्था में प्रौढ़ में सामाजिक चेतना का विकास हो जाता है इसलिए उसका व्यवहार सामाजिक मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों से निर्धारित होता है। वह अपना व्यवहार सामाजिक मानकों के अनुरूप करता है जिससे उसको सामाजिक स्वीकृति मिलती है। इस समय वह यह भी समझता है कि मेरी नैतिकता का बच्चों पर भी प्रभाव पड़ता है इसलिए वह कोई भी कार्य करने से पहले उसे नैतिकता के मापदण्ड पर आँकता है। अनैतिक कार्यों से दूर चाहता है। वह आन्तरिक चेतना से कोई कार्य करता है। नैतिक कार्यों के करने पर उसे प्रसन्नता तथा अनैतिक कार्यों के करने पर उसे आत्मग्लानि होती है। इस तरह से यह कहा जा सकता है कि नैतिक विकास तथा परिवर्तन में आन्तरिक चेतना का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

2.12 प्रारम्भिक प्रौढावस्था की व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्यायें (Personal & Social Hazards of Early Adulthood)

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की अनेक समस्यायें होती है जिनका सामना प्रौढ़ को करना पड़ता है। सुविधा के लिए इन समस्याओं को अग्र भागों में विभक्त किया जा सकता है-

- **शारीरिक समस्याएँ-** खराब स्वास्थ्य तथा शारीरिक दोष के कारण व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन प्रभावित होता है। ऐसे प्रौढ़ जो विकलांग होते है तथा उनका स्वास्थ्य खराब रहता है, वे उन व्यवसायिक और सामाजिक लक्ष्य की प्राप्ति अपने जीवन मे नहीं प्राप्त कर पाते हैं जिनके लिए वे तत्पर रहते हैं। इस असफलता के कारण उनमें हताषा, कुण्ठा तथा निराशा जन्म ले लेती है। कभी-कभी जब वे अपनी उपलब्धियों की तुलना अपने समकक्ष सदस्यों से करते हैं तथा इस तुलना में अपने को कम उपलब्धि वाला मानते हैं तो वे और हताश हो जाते है तथा यह हताशा उनके लिए प्रतिबल का रूप ले लेती है। कभी-कभी वे शारीरिक समस्या के कारण ह्दय रोग से ग्रस्त हो जाते है। शारीरिक दोष और खराब स्वास्थ्य अच्छे शारीरिक और

सामाजिक समायोजन हेतु उतना समस्यात्मक नही होता है जितना कि वह अनाकर्षण को जन्म देता है। वे समझते है कि शारीरिक दोष के कारण मुझमें आकर्षकता नही आती है तथा वे उसके कारण वैवाहिक समस्यायों के लिए परेशान रहते हैं। जबकि वे लोग ज्यादा सफल होते है जो लोग आकर्षक शरीर वाले होते हैं तथा शारीरिक दोष नही रखते है। उदाहणार्थ- आकर्षक महिलाओं की शादी अनाकर्शक महिलाओं की तुलना में अच्छी एवं शीघ्र हो जाती है। वे ऐसा भी मानते है शारीरिक स्वास्थ्य से प्रौढ़ प्रसिद्धि तथा सामाजिक क्षेत्र में अपना एक स्थान बनाता है। उससे वे काफी परेशान रहते हैं। अतः शारीरिक समस्याएँ प्रारम्भिक प्रौढावस्था पर बुरा प्रभाव डालती है।

- **समस्याएँ**-ज्यादातर प्रौढ़ दो प्रकार की धार्मिक समस्याओं से परेशान रहते हैं। पहली समस्या यह कि उन्हे नये धार्मिक विश्वासों के साथ समायोजन करना पड़ता है तथा बाल्यावस्था के धार्मिक विश्वासों मे परिवर्तन पड़ता है। इस तरह से यह देखा जाता है कि कुछ प्रौढ़ इन नये धार्मिक विश्वासों के साथ समायोजन अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा रूचियों के अनुसार समाधान कर लेते है। कुछ प्रौढ़ अपने पति या पत्नी को प्रसन्न करने के लिए शादी के बाद नये धार्मिक विश्वास को स्वीकार कर लेते है। दूसरी समस्या जो धर्म से संबंधित होती है तो वह अपने जीवनसाथी के चयन में धर्म के महत्व को समझने की। उसमें प्रायः जब प्रौढ़ अपनी शादी करता है। यदि वह अन्तरधर्मीय शादी करता है तो उसके माता-पिता उसके शादी को इस तरह से मना करते है कि मेरा धर्म उसके धर्म से अच्छा एवं उत्तम है अतः यह शादी नही हो सकती है। इस संबंध में प्रायः प्रौढ़ द्वन्द्व की स्थिति में आ जाता है तथा यह निर्णय नही ले पाता है कि मुझे क्या करना चाहिए? प्रायः दादा-दादी तथा परिवार के अन्य सदस्य इस बात के लिए मना करते है कि इस शादी का क्या परिणाम होगा सोच लो। अन्त में ऐसा देखा जाता है कि या तो वह प्रौढ़ परिवार छोड़कर अलग अपनी दुनिया बसाता है या वह परिवार के सदस्यों के आधार पर अपनी राय बदल देता है। जब ऐसी समस्याएं प्रौढ़ के सामने आती है तो प्रौढ़ के माता-पिता पारिवारिक विश्वास तथा धर्म को ज्यादा महत्व देते है। यही धार्मिक विश्वास आगे चलकर वैवाहिक समायोजन मे भी समस्या बनता है।
- **सामाजिक समस्याएँ-** सामाजिक समस्याओं में अधिकतर प्रौढ़ों को नये सामाजिक समूहों के साथ समायोजन करने में समस्या होती है। सामान्य रूप से तीन प्रकार की सामाजिक समस्याएँ इस अवस्था में दिखायी देती है जिसका समायोजन कम हो पाता है। पहली सामाजिक समस्या यह होती है कि प्रौढ़ संवेदनशील या अनुकूल सामाजिक समूह के साथ साहचर्य स्थापित करने में कठिनाई महसूस करते हैं। यह एक प्रौढावस्था का विकासात्मक कार्य है। इस कठिनाई के कई

कारण हो सकते हैं। उदाहरणार्थ- जो महिला अपने गृह जिम्मेदारियों से बँधी होती है उनके पास इन संवेदनशील समूहों के साथ साहचर्य हेतु समय नही होता है और धन भी नही रहता। इसके परिणामस्वरूप मानसिक असंतोष एवं मानसिक तनाव झेलना पड़ता है। अंततः यह उनके वैवाहिक संतोष को प्रभावित करता है। इसी प्रकार पुरुष भी घर के बाहर अपने जिम्मेदारियों से इतना व्यस्त हो जाता है कि उसके पास समय एवं धन होते हुए भी वह अपने को अकेले रखना ही पसन्द करता है। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि ये संवेदनशील समूह प्रौढ़ की रुचियों के अनुकूल नही होते है। कुछ प्रौढ़ पुरुष अपने कैरियर में इतने ऊचें जाना चाहते कि उन्हें सामाजिक संबंधों का ख्याल ही नही रहता है। एरक्सिन एंव हेरीगहस्ट ने प्रारम्भिक प्रौढावस्था को सामाजिक अलगाव की अवधि भी कहा है। दूसरी सामाजिक समस्या प्रौढ़ों में नयी सामाजिक भूमिकाओं को साथ समायोजन न करने से है। ऐसे प्रौढ़ जिनमे बाल्यावस्था और किशोरावस्था में नेतृत्व के गुण दिखाई पड़ते है वो जब यह देखते है कि नेतृत्व उन प्रौढ़ को पास चला गया है जिनके पास उच्च सामाजिक स्तर, प्रतिष्ठा तथा धन ज्यादा है तो वे इस कमी को पूरा नही कर पाते है और परेशान हो जाते है। सामाजिक भागदौड़ वाले प्रौढ़ उन लोगों से ज्यादा परेशान दिखायी देते हैं जो लोग कम भागदौड़ वाले होते हैं। ऐसा देखा गया है कि जिस परिवार में सामाजिक गतिशीलता अधिक पायी जाती है वहॉ पर सामाजिक समायोजन नये मूल्यों, रुचियों तथा मानकों के साथ शीध्र होता है।

- **लैंगिक भूमिका की समस्या**- पुरुष तथा महिलाएँ इस अवस्था में लैंगिक भूमिका की समस्या से परेशान रहते है। इस अवस्था में उन्हें लिंगसम्मत यानि पुरुशोचित और स्रियोचित व्यवहार करना पड़ता है। इस अवस्था में प्रायः प्रौढ़ अपनी मर्दानगी साबित करने के लिए किस हद तक जा सकता है। उसका अंदाजा लगाना मुश्किल होता है। वह महिलाओं की तुलना में अपने को उत्तम मानता है। इस प्रकार महिलाओं को निम्नतर स्तर का दिखाना या बताना महिलाओं में 'अल्पसंख्यकसमूह ग्रन्थि' का विकास होती है जैसा कि Midgley & Abrams (1974) लिखते है "Social constraints and social definition of sex Appropriate behavior have had crippling effects on Achievement motivation in Women." यदि एक पत्नी और माँ यह समझती है कि जिसके लिए मैने अपना पूरा जीवन न्यौछावर कर दिया वही मेरे प्रयास को महत्व नहीं दे रहा है। यदि वह यह समझती है कि जो कार्य वह कर रही है वह नीरस है तथा वह उसकी योग्यता एवं प्रशिक्षण से निम्नस्तर का है और यदि वह समझती है कि जिस व्यक्ति के साथ मैने प्यार किया है, वह छूट रहा है, तो वे भ्रमित हो जाती है तथा क्रोधित भी होती है। इस प्रकार की अभिवृत्तियों Lazy Husband Syndrome

प्रदर्शित होता है। पत्नी क्रोध का अनुभव करती है जब वह देखती है कि मेरा पति मेरे कार्य को सीधे तौर पर तथा हल्के रूप में ले रहा है जबकि मै रात-दिन इसी कार्य कर रही हूँ। जब विवाहित महिलाएँ घर से बाहर काम करती है तो वे कार्य भार को महसूस करती है। कभी-कभी ये महिलाएँ ये देखती है कि यदि उनके कैरियर से उनके पति के कैरियर में द्वन्द्व उत्पन्न हो रहा है तो वे उस कैरियर को छोड़कर कोई और कैरियर अपना लेती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अच्छी शारीरिक एवं सामाजिक समायोजन की समस्या प्रायः लैंगिक भूमिका रूढ़ियुक्तियों पुरुष तथा महिलाओं के अभिवृत्ति तथा व्यवहार को प्रभावित करती है। आजकल परम्परागत लैंगिक भूमिकाओं की रूढ़ियुक्तियाँ सुसमायोजन में बाधक दिखायी पड़ती है।

- **व्सायिक समस्याएँ**- प्रारम्भिक प्रौढावस्था में व्यावसायिक समस्याएँ भी देखा जाती हैं। इसमें दो प्रकार की समस्याएँ होती हैं प्रथम कार्य असंतोष की समस्या तथा दूसरी बेरोजगार की समस्या। कार्य संतोष की समस्या प्रायः सभी वर्गो के प्रौढों में परिलक्षित होती हैं। यदि प्रौढ़ों को अपनी योग्यता शिक्षा अथवा प्रशिक्षण के अनुसार कार्य नही मिलता है तब भी असंतोष उत्पन्न होता है। कार्य असंतोष का मुख्य कारण स्वायत्तता का अभाव, बोरियत, नीरसता, संवेदनशीलता का अभाव, खाली समय में पाबन्दी आदि हो सकता हैं। कार्य असंतोष प्रायः उन प्रौढ़ों में ज्यादा दिखायी देता है जो प्रौढ़ अपने कार्य को अपनी योग्यता एवं क्षमता से निम्नस्तर का मूल्यांकित करते हैं। कार्य असंतोष के कारण प्रेरणा का स्तर निम्न हो जाता है जिसके कारण उसका निष्पादन भी निम्न स्तर का होता हैं। दूसरी और व्यावसायिक समस्याएँ रोजगार का न हाने से भी होता हैं। यह सामान्य व्यावसायिक समस्या हैं। यदि एक व्यक्ति अपना व्यवसाय इसलिए छोड़ता हैं कि वह शीध्र ही नया व्यावसाय पा जायेगा तो वह उससे समायोजित हो जाता हैं परन्तु जिस प्रौढ़ को यह आभास हो कि नौकरी छूटने के बाद दूसरी नहीं मिलेगी तो वह ज्यादा परेशान होगा तथा उसका समायोजन भी ठीक नहीं होगा। इस तरह से स्पष्ट हो रहा है कि प्रारम्भिक प्रौढावस्था में कार्य असंतोष और बेरोजगार प्रौढ़ की प्रमुख व्यावसायिक समस्याएँ होती हैं जिसके कारण प्रौढ़ का समायोजन प्रभावित होता हैं।
- **वैवाहिक** समस्याएँ **-** बहुत सारी समस्याएँ प्रौढ़ कि वैवाहिक समायोजन से सम्बन्धित होती हैं। जैसा कि Renne, 1970 लिखते है “relations with the spouse are so central feature of an individuals’ social and emotional life that an unhappy marriage may impair the capacity of both partners for satisfactory relations with their children and others outside the family.”

वैवाहिक समस्याओं में प्रथम समस्या साथी के साथ समायोजन की होती है। जब पति और पत्नी अंतरजातीय विवाह करते है तथा अलग-अलग धर्म के होते है तो वैवाहिक समायोजन में कठिनाई होती है। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि जिन पति-पत्नियों में हमेशा झगड़ा हुआ होता है, उनकी रूचियाँ, उनके मूल्य तथा उनके विश्वास आपस में टकराते है जिससे समायोजन में बाधा पहुचती है। प्रायः वैवाहिक जीवन कि दूसरी सबसे बड़ी समस्या "प्रतिस्पर्धा की भावना" को माना जाता है। प्रतिस्पर्धा की भावना पुरूषों में महिलाओं की अपेक्षा ज्यादा दिखायी देती है। जो महिलाएँ अपने सामाजिक जीवन में सफल होती है। वे धीरे-धीरे दूसरों से भी प्रतियोगिता में आगे आना चाहती है। यह प्रतियोगिता की भावना उन्हें सुखद, घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने में बाधक होती है। विशेषकर लैंगिक समायोजन इससे ज्यादा प्रभावित होता है। प्रतिस्पर्धा की भावना उस समय समस्यात्मक रूप ग्रहण कर लेती है जब महिलाएँ अपने पति से आगे निकल जाती है। वैसे अधिकतम प्रौढ़ अपने पत्नियों की सफलता पर गर्व महसूस करते है। प्रायः कभी-कभी वे ईष्यालु व्यवहार करते है। Frank Anderson, Rubinstein, 1978, Muiller and Capapbell, 1977 लैंगिक समायोजन यदि शादी के प्रारम्भिक वर्षो से खराब है तो उससे भी वैवाहिक समस्याएँ जन्म लेती है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि अधिकतर महिलाएँ अपने बच्चों की देख-रेख तथा पारिवारिक कार्यों में व्यस्त रहती है। पारिवारिक कार्यो में पारिवारिक सदस्यों से अगर मदद नही मिलती है तो वे प्रायः थक जाती है यह थकान उनके लैंगिक समायोजन तथा लैंगिक क्रियाओं को प्रभावित करती है। प्रायः यह भी देखा जाता है कि यदि पति या पत्नी में जिस किसी के परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर उच्च है। वह भी परिवार में केवल दंपत्ति में ही तनाव नहीं पैदा करता है बल्कि सास एवं ससुर भी इससे परेशान रहते है। सास-ससुर से कटु सम्बन्ध दम्पत्ति में पत्नी को ज्यादा प्रभावित करता है क्योंकि वही परिवार में ज्यादा रहती है। यह सम्बन्ध उसके वैवाहिक समायोजन को भी प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ- बच्चा पैदा हो जाने पर पत्नियाँ ज्यादा ध्यान व समय अपने बच्चों पर देती हैं तथा पति पर समय तथा ध्यान कम देती है। उससे पति का पत्नी के प्रति लगाव कम होता है जिससे वैवाहिक समायोजन प्रभावित होता है। ऐसे दम्पत्ति जो ज्यादा बच्चे पैदा करते है या ऐसे बच्चे पैदा हो जाते है। जिनकी उन्हे जरूरत नहीं थीं यानि बेटे के जगह पर बेटी का जन्म लेना, उनकी आर्थिक स्थिति खराब होने से परेशान रहते है तथा उनकी पालन-पोषण हेतु इतनी चिन्ता रहती है कि वे लैंगिक क्रियाओं से विमुख हो जाते है। इस तरह से भी दाम्पत्य जीवन प्रभावित होता है। अंतिम समस्या जो वैवाहिक समायोजन को प्रभावित करती है पति एवं पत्नी को अपनी संतानों के भविष्य की चिंता से सम्बंदित होती है। यदि संतानें माता-पिता की इच्छानुसार विकसित नहीं हो रही है तो उससे उनका दाम्पत्य जीवन प्रभावित होता है। कभी-कभी सन्तानों एवं माता-पिता के बीच टकराव भी लैंगिक समायोजन को प्रभावित करता है।

- **पुनर्विवाह की समस्या-** प्रारम्भिक प्रौढावस्था में यदि दम्पत्ति में से किसी एक एक भी मृत्यु हो जाती है तो पुनर्विवाह की समस्या जन्म लेती है। कभी-कभी तलाक के बाद भी पुनर्विवाह

करना पड़ता है। ऐसे आँकड़ें प्राप्त हैं कि अधिकतर प्रौढ़ तलाक या किसी एक की मृत्यु के बाद 5 वर्षों के अन्दर पुनर्विवाह कर लेते हैं। जिन महिलाओं की उम्र जब 35 वर्ष होती है। यदि विधवा हो जाती है। तो वे पुनर्विवाह कम करना चाहती है। सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ऐसी धारणा बन जाती है कि पुनर्विवाह अधिकतर समस्याओं का समाधान कर देता है। कभी-कभी पुनर्विवाह उतना सफल नहीं हो पाता है जितना पहला विवाह सफल था। कुछ अध्ययनों में (Duberman, 1975) ऐसा भी देखा गया है तलाकशुदा महिलाओं की तुलना में उन महिलाओं का विवाह ज्यादा स्थायी एवं स्थिर होता है जो पति की म्रत्यु के उपरांत किया जाता है। तलाकशुदा महिलाओं के पुनर्विवाह के साथ वही समायोजन की समस्या जन्म लेती है जो समायोजन प्रथम शादी के समय दिखायी देते है। कभी-कभी समायोजन की समस्याएँ व्यक्तिगत तथा सार्वभौमिक दोनों होती है। इसमें दम्पत्ति को पुराने समायोजन को तोड़कर नया समायोजन बनाना पड़ता है। कभी- कभी समायोजन की समस्या उस समय बढ़ जाती है जब नवदम्पत्ति को पुनर्विवाह के बाद सौतेली माँ और सौतेली बाप की भूमिका भी निभानी पड़ती है। इस स्थिति में पुनर्विवाह उनके लिए नरक हो जाता है तथा और समस्याएँ जन्म ले लेती है।

संक्षेप में यह कह सकते है कि प्रारम्भिक प्रौढावस्था में कई विकासात्मक कार्य करने पड़ते है। व्यक्ति को नयी भूमिकाओं का निर्वाह करना सीखना पड़ता है। समायोजन का महत्व विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ जाता है। इस तरह से प्रारम्भिक प्रौढावस्था जीवन विस्तार की एक प्रमुख अवस्था है।।

2.13 सारांश:-

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में प्रौढावस्था एक ऐसी अवस्था है। जिसमें शारीरिक व मनोवैज्ञानिक परिर्वतन तीव्र गति से होते है। इस अवधि में प्रौढ की लैंगिक क्रियाओं में परिवर्तन दिखाई देता है। वह परिपक्व होता है। उसे वैधानिक अधिकार मिल जाते है। उसे जीवन के नये सहभागियो के साथ समायोजन करना पड़ता है। वह समाज में नई भूमिकाओं का निर्वाह करने लगता है। वह पति-पत्नी व माता पिता भी भूमिकाओं का वह निहर्वन करने लगता हैं इन भूमिकाओ का निर्वाह करते उसकी अमिवृत्ति व रूचियों में परिवर्तन होने लगता है, नई रूचिया जन्म लेती है। चूकिं जीवन शैली, आर्थिक स्थिति व सामाजिक भूमिकाओं में परिवर्तन के कारण नव प्रौढ का केन्द्र बिन्दु परिवार हो जाता है इसलिये मनोरंजन के साधनों में भी परिवर्तन होने लगता है। वो ज्यादातर पार्टियों, खेलकूद, वार्तालाप, नृत्य व कम्प्यूटर नेट तथा टी0बी0 से मनोरंजन करने लगते है। सामाजिक भूमिकाओं के बदलने के कारण सामाजिक रूचियॉ प्रभावित होती है। इस अवस्था में मित्र मण्डली छोटी पर घनिष्ठ होती है। इसी प्रकार यौन भूमिकाओं में परिवर्तन होने लगता है। चूकिं माता पिता की भूमिका निभाने के लिए वो धार्मिक व नैतिक मानदण्डों पर खरे उतरने की कोशिश करते है।

इस अवस्था की भागदौड़ ने उन्हें व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं से भी रूबरू होना पड़ता है। उन्हें शारीरिक धार्मिक लैंगिक सामाजिक एंव वैवाहिक समायोजन में कई बार दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। इन सबके बाद भी प्रारम्भिक प्रौढावस्था जीवन विस्तार की प्रमुख अवस्था है।

निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1.रूचियों से आप क्या समझतें है। प्रारम्भिक प्रौढावस्था में रूचियों के परिवर्तन के बारे में बताएं?

प्रश्न 2."सामाजिक गतिशीलता व्यक्तित्व विकास में सहयोगी है" स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 3.वैयक्तिक रूचि से आप क्या समझते है? नव प्रौढावस्था में व्यक्तिक रूचि को प्रभावित करने वाले कारकों पर प्रकाश डालियें ?

प्रश्न 4. व्यक्तिगत व सामाजिक खतरों का उल्लेख कीजिए?

प्रश्न 5. टिप्पणी लिखियें-

1. सामाजिक गतिशीलता।
2. प्रारम्भिक प्रौढावस्था में मनोरंजन।
3. सामाजिक रूचियां।

2.14 संदर्भ सूची

1. डा0 प्रीती वर्मा एवं डा0 डी0 एन0 श्रीवास्तव-बाल मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
2. डा0 राम जी श्रीवास्तव, डा0 गाजी गौस आलम - मोती लाल बनारसीदास बंग्लों रोड दिल्ली।
3. अमरनाथ राय, मधु आस्थाना-निर्देशन एवं परामर्श मोतीलाल बनारसीदास बंग्लों रोड दिल्ली
4. भाई योगेन्द्र-विकासात्मक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
5. Elizabeth B. Hurlock- Developmental Psychology Tata McGraw-Hill Edition Private Limited-New Delhi
6. डा0 प्रीती बर्मा एवं डा0 डी0 एन श्रीवास्तव- आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान विनाद पुस्तक मन्दिर दिल्ली।
7. डा0 पी मिश्र- आज का विकासात्मक मनोविज्ञान साहित्य प्रकाशन आगरा।

इकाई 3. व्यावसायिक, पारिवारिक, वैवाहिक एवं पितृत्व या मातृत्व हेतु समायोजन; वैवाहिक जीवन में समायोजन का मूल्यां;कन (Vocational, Family, Marital and for Parenthood Adjustment; Assessment of Marital Adjustment)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 समायोजन की परिभाषायें

3.4 व्यवसायिक एवं परिवारिक समायोजन

3.4.1 पारिवारिक समायोजन

3.4.2 व्यवसायिक समायोजन

3.5 वैवाहिक समायोजन

3.6 मातृत्व एवं पितृत्व के प्रति समायोजन

3.5.1 एकल माता-पिता

3.7 वैवाहिक समायोजन का मूल्याकंन

3.7.1 वैवाहिक समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक

3.7.2 सफल वैवाहिक जीवन की कसौटियाँ

3.8 सारांश

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.10 संदर्भ सूची

3.1-प्रस्तावना -

कोई भी समाज व्यवस्यित और अनुशासित तब माना जाता है जब समाज में रहने वाले व्यक्तियों का समायोजन अच्छा एवं बेहतर हों। समायोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। कोई व्यक्ति कितना प्रभावशाली है यह उसकी समस्या की संख्या से ज्ञात नहीं होता बल्कि इस बात से होता हैं कि वह समस्याओं एवं जीवन की चुनौतियों को किस प्रकार स्वीकार करता है। अगर व्यक्ति चुनौतियों का डटकर एवं सकारात्मक तरीके से समाधान करता है तो समायोजन में उसकी प्रभावशीलता बढ जाती है। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के समायोजन को मापने के लिए मात्र एक क्षेत्र का अध्ययन नहीं किया जा सकता वरन् समायोजन देखने के लिए पारिवारिक, व्यवसायिक समाजिक, सांस्कृतिक, वैवाहिक एवं शैक्षिक आदि तमाम् क्षेत्रो के समायाोजन का अध्ययन करना आवश्यक है।

प्रस्तुत इकाई में व्यवसायिक पारिवारिक एवं वैवाहिक समायोजन को जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि समायोजन क्या है? प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ न कुछ समस्यायें एवं परेशानियाँ आती है। वह इन समस्याओं एवं परेशानियों के प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया करता है अथवा किस प्रकार का समायोजन करता है यह एक महत्वपूर्ण कारक है। अधिकांशतः हम देखते हैं कुछ व्यक्ति अपने ईच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूति अपने वातावरण में ही बेहत्तर ढ़ग से कर जाते हैं तथा कुछ छोटी सी परेशानी पर ही दुखी एवं तनावग्रस्त हो जाते हैं। ये सभी बातें व्यक्ति द्वारा की गई समायोजित व्यवहार पर निर्भर करती हैं।

3.2 उद्देश्य

समायोजन जीवन का अहम् हिस्सा है। व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों अथवा अपने पर्यावरण से जैसा समायोजन करेगा उसके व्यक्तित्व में उसकी स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। प्रस्तुत इकाई में प्राराम्भिक प्रौढावस्था के जीवन के विभिन्न क्षेत्रो के समायोजन का अध्ययन किया गया है। इसके निम्न उद्देश्य हैं-

1. इस इकाई में छात्र-छात्रायें समायोजन का अर्थ एवं उसकी परिभाषाओं को जान पायेंगे।
2. व्यवसायिक व पारिवारिक समायोजन को प्रभावित करने वाले कारको को जान पायेंगे।
3. व्यक्ति अपने वैवाहिक जीवन में कैसे समायोजन करता है तथा सफल वैवाहिक जीवन को प्रभावित करने वाले कारक पर चर्चा करेंगे।

4. प्रस्तुत इकाई में प्रारम्भिक प्रौढ मातृत्वएंव पितृत्व के प्रति कैसा समायोजन करते हैं तथा इसे प्रभावित करने वाले कारको से अवगत होंगे। साथ ही वर्तमान समय में वैवाहिक समायोजन में आने वाली समस्याओं का मूल्यांकन तथा एक सफल वैवाहिक जीवन की कसौटियों का अध्ययन किया जायेगा।

3.3 समायोजन की परिभाषायें (definition of adjustment)

- **आइजैंक** के अनुसार समायोजन वह अवस्था है जिसमें एक तरफ व्यक्ति की आवश्यकता होती है और दूसरी तरफ वातावरण के अधिकारों में पूर्ण सन्तुष्टि होती है अथवा समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा इन दोनो अवस्था में संतोषजनक तालमेल होता है। **(Adjustment is a state in which the needs of the individual on the one hand and claims of Environment on the other are fully satisfied or it is the process by which this harmonious relationship can be attained)**
- **बोरिंग एवं साथी** (Boring &other's)- समायोजन यह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में तालमेल बनाये रखता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं एवं उनकी पूर्ति के लिए वातावरण की विभिन्न परिस्थितियों से जो तालमेल बनाये रखता है वही समायोजन है जो कि स्थिर न होकर, एक गतिशील प्रक्रिया है।

3.4 व्यवसायिक एवं पारिवारिक समायोजन (Vocations & Family adjustment)

यह हम सभी जानते हैं कि प्रौढावस्था में व्यवसाय एवं पारिवारिक जीवन दो महत्वपूर्ण घटक होते हैं। इन दोनो मे तालमेल बनाये रखना एवं बेहतर समायोजन रखना एक कठिन प्रक्रिया है। प्रौढावस्था को प्राप्त करना होना कोई सरल बात नहीं हैं। समाज प्रौढ व्यक्ति से कई बातों की अपेक्षा रखता है। जैसे- जीवन साथी चुनना, पति-पत्नी के साथ परिवार में रहना, बच्चों का पालन-पोशण, ग्रह व्यवस्था, जीविकोपार्जन की पूर्ति हेतु व्यवसाय अपनाना, नागरिक उत्तरदयितव, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समायोजन को बनाये रखना इत्यादि।

3.4.1 परिवारिक समायोजन- परिवारिक समायोजन की अगर हम बात करें तो हम देखते है कि प्रारम्भिक प्रौढावस्था में व्यक्ति को बहुत सी चुनौतिया का सामना करना पड़ता है। जीवन साथी के चुनाव

के समय ही स्त्री एवं पुरूष को अपने परिवेश व विचारो के प्रति जागरूक होते हुए उसी के अनुरूप यह देखना होता है कि जीवन साथी के साथ वो सन्तोषजनक तालमेल रख पायेगें या नहीं। अगर पति-पत्नी एक दूसरे के प्रति समार्पित होते हैं, एक-दूसरे के भावनाओं का खयाल रखते हैं तथा कठिन परिस्थित्तियों में भी एक दूसरे के साथ खडे रहते हैं तो समायोजन बेहतर एवं सन्तोषप्रद होता है। चूकिं इस अवस्था में अपने जीवनसाथी के पूर्ण विचारो से अवगत होना व उसकी भावनाओं को समझ पाना थोड़ी कठिन होता है अत पत्नियों के लिए समायोजन और कठिन होता है। महिलाएं शादी के बाद बिल्कुल नये परिवेश का सामना करती है तथा उनसे समाज सभी रिशते नाते एवं कार्यो को बेहत्तर निभा लेने का अपेक्षा करता है। अगर महिलायें इन कार्यों को बेहतर ढ़ग से करती है तो उसे पारिवारिक लगाव के साथ समाजिक स्वीकृति भी प्राप्त होती है। यहाँ यह कहना भी समीचीन होगा कि विवाहित स्त्री-पुरूषों के तालमेल के साथ परिवार के अन्य सदस्यों का व्यवहार इन लोगो के साथ सकारात्मक है या नहीं, यह महत्वपूर्ण होता है। जैसे-दहेज प्रथा के कारण आज भी भारत में हजारो लड़कियों को जो कि काबिल एवं सर्वगुण सम्पन्न होती है को इसलिए प्रताड़ित कर दिया जाता है क्योंकि विवाह के समय वो अपने साथ ससुसरालियों की ईच्छानुसार मोटी रकम नहीं ला पाती है जिसकी वजह से इन लडकियों को हमेशा नकारात्मक व्यवहार का सामना करना पड़ता है। ऐसी प्रथाओं के कारण पारिवारिक समायोजन में समस्या उत्पन्न होने लगती है। ऐसी संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण कई बार परिवार भी टूट जाते हैं और कई बार बडे-2 अपराध भी हो जाते है।

नव प्रौढो के सम्मुख गृहव्यवस्था भी एक चुनौती होती है। वर्तमान समय में महिला व पुरुष दोनो ही कार्य के लिए बाहर जाते है। ऐसी स्थिती में गृहव्यवस्था के लिए उनके पास समय का अभाव होता है। अगर बच्चे छोटे हैं, तो उनकी देख-भाल भी उनके लिए एक चुनौती होती है। चूकि आज भी बच्चों की देख-रेख माता की जिम्मेदारी मानी जाती है इसलिए कार्य का दोहरा बोझ महिला को चिड़चिड़ा एवं कुण्डित कर देता है जो पति-पत्नी के सम्बन्ध पर भी नकारात्मक प्रभाव पडता है। साथ ही पारिवारिक समायोजन में भी मुश्किल बड़ा देता है। पारिवारिक समायोजन पर और चर्चा वैवाहिक समायोजन एवं मातृत्व एवं पितृत्व के प्रति समायोजन में किया गया है।

3.4.2 व्यवसायिक समायोजन- आधुनिक युग में नव प्रौढ़ों के लिए व्यवसायिक समायोजन एक चुनौती है। आज के ज्यादात्तर प्रौढ चाहे वो पश्चिम के हो अथवा यूरोपीय, इस बात पर उनकी खुशी निर्भर करती है कि उनकी कमाई कितनी है तथा कमाई का ढ़ग उनकी रूचिनुसार है या नही, उनके सम्पूर्ण जीवन का स्वरूप उनके व्यवसायिक उतार चढ़ाव पर निर्भर करता है।

चूकिं अब ज्यादात्तर महिलायें भी चाहे वो अविवहित हो या विवहित, बाहर काम पर जाती है तो उन्हें भी व्यवसायिक समायोजन करना पडता है यह समायोजन पुरुषों से ज्यादा महिलाओं के लिए मुश्किल होता है। सरकारो के लिंग-भेद मिटाने के प्रयाअत: के बावजूद महिलाओं को रोजगार में कम तनखाँ वाली नौकारियों का सामना करना पड़ता है तथा कुछ क्षेत्रों में लिंग भेद मिटाने के कानून के लिए उन्हें उतना ही प्रवेश मिलता है जितना आरक्षित है।

अत: यह भी महिलाओं के लिए कुंठा का कारण बनती है सक्षम एवं काबिल होने पर भी उन्हें आरक्षित होने के तमगे से नवाजा जाता है। ऐसे परिवेश में उन्हें इन विपरीत परिस्थितियों में भी समायोजन करना पड़ता है। महिलायें कई बार समायोजन का सामान्य तरीका अपनानी है कि वह जो सफलता उपलब्ध करना चाहती हैं वो सफलता अपने पति को उपलब्ध करने में मदद करती हैं जिससे वो स्वंय को कुंठित होने से बचा लेती हैं। व्यवसायिक समायोजन के क्षेत्र-बहुत से अध्ययनों से पता चलाता है कि व्यवसायिक समायोजन के निम्न क्षेत्र हैं।

a) **व्यवसाय का चुनाव-** व्यवसायिक चुनाव व्यक्ति के जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय होता है। मनौविज्ञानिकों की दृष्टि में व्यवसायिक चुनाव कोई बिन्दु नही है वरन् एक विकासात्मक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के समूचे विगत विकासात्मक इतिहास और अनुभवों से प्रभावित होती है। कुछ प्रौढ़ व्यवसाय का चुनाव कई वर्ष पूर्व कर लेते हैं तो वही कुछ कालेज कर लेने पर भी यह तय नही कर पाते हैं कि उन्हें क्या करना है और कुछ अपने परम्परागत व्यवसाय को अपनाते है। विभिन्न अध्ययनों में वर्तमान समय में कई ऐसे सबूत मिले है कि व्यवसाय का चुनाव करना पीढ़ी दर पीढ़ी मुश्किल होते जा रहा है। आधुनिक समय में व्यवसायों की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हो रही है जिस कारण प्रौढ़ों में यह अन्तर्द्धन्द उत्पन्न हो जाता है कि किस व्यवसाय को अपनायें जो कुसमायोजन उत्पन्न करता है। कार्य स्थल में कार्य समय में लचीलापन न होने से महिलाओं के लिए समायोजन कठिन हो जाता है क्योंकि उन्हें कार्य प्रारूप के साथ घर की जिम्मेदारियों को भी वहन् करना पड़ता है। अपनी योग्यता एंव महत्वाकाक्षा अथवा शिक्षा एंव प्रशिक्षण के अनुसार व्यवसाय न मिलने पर समायोजन करना कठिन हो जाता है। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है व्यवसायिक चुनाव जीवन का एक अहम् पहलू है जहाँ व्यक्ति में व्यवसायिक कुसयायोजन मात्र अपनी क्षमताओं व महत्वाकांक्षाओं के अनुसार व्यवसाय न चुनने से नही होता वरन् व्यक्ति का पारिवारिक एंव सामाजिक जीवन भी प्रभावित हो जाता है।

b) **व्यवसायिक चुनाव में स्थिरता-** व्यक्ति के लिए व्यवसायिक स्थिरता उनके व्यवसायिक अनुभवों एंव मूल्यों पर निर्भर करती है। लगभग 20 से 30 वर्ष तक महिलायें एंव पुरूष अपने कैरियर के लिए व्यवसाय बदलते रहते है। परन्तु व्यवसाय सम्बन्धी स्थिरता आयु बढ़ने के साथ

बढ़ती जाती है। अधिकांशत वो व्यक्ति व्यवसाय परिवर्तित करते है जिनकी रूचियाँ बदलती जाती है। या वो जो कम प्रतिष्ठा वाले व्यवसाय से अधिक प्रतिष्ठा वाले व्यवसाय की तरफ उन्मुख होते है। कई बार व्यक्ति नौकरी अथवा व्यवसाय इसलिए भी बदल देते हैं क्योंकि उन्हें आर्थिक लाभ व सुविधायें पहले व्यवसाय से ज्यादा प्राप्त होती है या जो प्रतिष्ठा व सम्मान उन्हें वर्तमान में मिल रहा हैं वह पूर्व व्यवसाय एवं नौकरी से बेहतर होता हैं। आयु बढ़ने के साथ व्यवसाय में स्थिरता देखी गयी है। सामान्य तौर में लोग बड़ी उम्र में नये कौशल सीखने वाला व्यवसाय नहीं अपनाते। Biran &Allain का कथन हैं कि "बीस वर्ष के उपरान्त के पश्चात नये कौशल सीखने कठिन होने लगते है"। व्यक्ति का व्यवसाय अगर अपने मूल्यों के अनुसार हैं तो व्यवसायिक स्थिरता अधिक होती हैं। मेयर फिलिप तथा पियरसन के मतानुसार-"भिन्न-भिन्न लोगों के लिए व्यवसाय का अभिप्राय भिन्न होता है। यथा आत्मसम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा, समाज सेवा, आत्मभिव्यक्ति, आन्तरिक सन्तुष्टि, जीविकोपार्जन का साधन आदि,यदि चुना हुआ कार्य मूल्यों के अनुसार होता है तो सन्तोष देता है और स्थिर होता है" यह भी कहा जाता है कि जो व्यक्ति अपने व्यवसायिक जीवन वृत्ति में सफल होता है वह अपने व्यवसायिक चुनाव में स्थिर रहता है।

c) **कार्य समायोजन-** व्यवसायिक समायोजन का तीसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र कार्य समायोजन है। व्यवसायिक गतिविधियाँ प्रारम्भ होते ही उसे अपने कार्य क्षेत्र में सहयोगियों के साथ, अपने से वरिष्ठ अधिकारियों के साथ, अपने से निम्न वर्ग के साथ तथा कार्य क्षेत्र में लगाये जाने वाले रोक पर भी समायोजन करना पड़ता है। बहुत से उन प्रोढों को जिन्हे स्कूल व कालेज में किसी प्रकार का कोई कार्य अनुभव नही होता हैं उन्हें प्रारम्भिक कार्य क्षेत्र में समायोजन में दिक्कते होती हैं, जैसे जो छात्र-छात्रायें अपने स्कूल व कालेज के जीवन में देर में जाते है, कक्षाओं में नियमित नही पहुँचते है, शिक्षा को गम्भीरता से नही लेते है, नौकरी पर आने में उन्हें गम्भीरता से कार्य करने में कुँठा एवं असन्तोष का सामना करना पड़ता है। उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि कार्य समायोजन को प्रभावित करने वाला सबसे प्रमुख कारक कार्यकर्त्ता की अभिवृत्ति हैं।

हैविंगहर्स्ट ने कार्यकत्ताओं की अभिवृत्ति के सामान्यतः दो वर्ग में विभाजित किया।

1. **समाज व्यवस्था सम्बन्धी कार्य अभिवृत्ति (Society maintaining work attitude)** जो व्यक्ति अपने कार्य में बिल्कुल मन नहीं लगाता उसके सिर्फ अपने वेतन पाने में ही रूचि होती है तथा जिन्हे अपना कार्य एक बोझ के समान प्रतीत होता है व उन्हे अपनी सेवानिवृत्ति का इन्तजार रहता है उसे समाज व्यवस्था सम्बन्धी कार्य अभिवृत्ति में रखा जाता है।

2. **अहम् सम्मत कार्य अभिवृत्ति (Ego involving work attitudes)** अहम सम्मत कार्य अभिवृत्ति में कार्यकर्ता जो अपने कार्य में अहम् को सम्मिलित करते हैं जो अपने कार्य से काफी सन्तुष्ट रहते हैं क्योंकि उनके लिए कार्य स्व-सम्मान एवं स्व महत्ता का माध्यम होता है अर्थात् वो इसे प्रतिष्ठा पाने, सामाजिक अर्न्तक्रिया करने का केन्द्र बिन्दु मानते है ऐसे लोगों को व्यवसाय से सेवानिवृत्त होने पर दुःख होता है।

इसी प्रकार पुरूष एवं महिलाओं के कार्य समायोजन की बात करें तो यह देखा गया है कि पुरूषों व महिलाओं को यदि अपनी इच्छानुसार कार्य मिलता है तथा उनकी क्षमता एवं शिक्षा का पूर्ण सदुपयोग होता है तो कार्य समायोजन में उनकी भूमिका सन्तोशजनक होती है। इसके विपरीत यदि कार्यकत्ताओं को यह अनुभव होता कि उनकी शिक्षा प्रशिक्षण एवं क्षमतायें कम है व उनकी क्षमताओं का पूरा उपयोग नहीं हो पा रहा है अत: उनका समायोजन स्तर कम अथवा असन्तोषजनक हो सकता है जिसका प्रभाव उनके व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में भी स्वतः दिखाई देता है।

(1) **व्यवसायिक समायोजन का मूल्यांकन (Appraisal of Vocational adjustment)** सामान्य तौर पर प्रौढ़ चुने गये व्यवसाय में सफलतापूर्वक समायोजन करते है या नहीं, इनका निर्धारण तीन कसौटियों से किया जा सकता है-

- वो अपने व्यवसाय/नौकरी में कितनी उपलब्धियाँ प्राप्त करते है।
- अपनी नौकरी में वो कितना खुश हैं या अपने व्यवसाय/नौकरी को कितनी बार बदलते हैं।
- उन्हें तथा उनके परिवार को नौकरी/व्यवसाय से कितनी सन्तुष्टि मिलती है तथा उनके सामाजिक व आर्थिक स्तर पर इसका कितना प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त कसौटियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि यदि प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति अपने व्यवसाय में रूचि रखता है, उसके लिए जी-जान से मेहनत करता है, तथा मेहनत के बलबूते सफलता प्राप्त करता है तो यह उपलब्धियाँ उसे खुशी एवं प्रसन्नता प्रदान करती है जिसका प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ता है। यहाँ यह कहना भी समीचीन होगा कि व्यक्ति विशेष का व्यवसायिक समायोजन का प्रभाव मात्र उसी तक निर्भर नहीं होता वरन् उस के परिवार पर भी निर्भर करता है। यदि परिवार उसके (व्यक्ति विशेष) के व्यवसायिक समायोजन से खुश एवं सन्तुष्ट है तो व्यक्ति को यह व्यवहार कार्य के लिए और प्रेरित करता है।

प्रौढ़ मध्यवस्था तक सफलता की चाह सुरक्षा में बदल जाती है। और व्यक्ति एक सुरक्षित व्यवसाय चाहता है वह अपनी व्यवसायिक आकांक्षा एवं व्यवसायिक क्षमता को सुरक्षित व्यवसाय में

लगाना पसंद करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं व्यवसायिक समायोजन जीवन का महत्वपूर्ण घटक है।

3.5 वैवाहिक समायोजन (Marital adjustment)

विवाह एक महत्वपूर्ण संस्था है जो न केवल परिवार जैसी व्यवस्था का आधार है वरन् सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को एक महत्वपूर्ण रूप देने में इसकी भूमिका अहम् होती है। विवाह एक सर्वव्यापी संस्था है जिसका स्वरूप विभिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न पाया जाता है। विवाह के रूप व प्रथायें अलग होने के उपरान्त भी यह कहा जा सकता है कि विवाह एक सामाजिक संस्था है जो व्यक्ति को यौन सम्बन्धों का अधिकार देती है और उसे कुछ नियमों एवं कानूनों का पालन करते हुए अपने वैवाहिक जीवन में सामंजस्य बनाये रखने की उम्मीद की जाती है।

वर्तमान समय में यह एक अहम् सवाल बनता जा रहा है कि समाज में रहने वाल लोगों के मध्य वैवाहिक समायोजन कैसा है? क्योंकि बेहतर वैवाहिक समायोजन केवल परिवार की स्थापना ही नहीं करता वरन् व्यक्तित्व के स्वस्थ रूप का भी विकास करता है। परन्तु विवाह में केवल जीवन साथी या जीवन संगिनी से समायोजन मात्र नहीं है वरन् विवाह के पष्चात् नये नाते रिश्ते, समूहों एवं मित्रों से भी समायोजन करना पड़ता है। चूकिं विवाह के पश्चात् जीवन पद्धति बदल जाती है इसलिए समायोजन कई बार कठिन भी हो जाता है। जैसे-यदि कोई महिला बचपन से ही एकल परिवार में पली बढ़ी है और उसे इसी प्रकार का जीवन पसंद आता है तो ऐसी स्थिति में उस महिला के लिए संयुक्त परिवार में समायोजन करना कठिन हो जायेगा। एक सुदृढ़ वैवाहिक संबध के लिए आवश्यक हैं, वैवाहिक जीवन अच्छा, सफल एवं शान्तिपूर्ण हो एक सुखी एवं सफल वैवाहिक जीवन के लिए निम्न समायोजन महत्वपूर्ण हैं-

1. जीवन साथी/संगिनी से समायोजन-वैवाहिक समायोजन का सबसे बड़ा केन्द्र बिन्दु पति-पत्नी के समायोजन का है। पति-पत्नी में प्रेम के साथ-साथ पारस्परिक सम्बन्ध भी अच्छे होने चाहिए। अधिकांश पुरूष अपनी पत्नी के सदंर्भ में एक आदर्ष काल्पनिक चित्र अपने मानस पटल पर रखते है तथा महिलायें अपने मानस पटल पर पति का आदर्श काल्पनिक चित्र बनाये रखती है। अगर ये एक-दूसरे के अनुरूप नहीं होते है तो समायोजन में कठिनाई उपस्थित होती है।
2. आवश्यकता की पूर्ति- एक अच्छे समायोजन के लिए यह आवश्यक है कि पति-पत्नी एक दूसरे की जरूरतों या आवश्यकताओं को प्रारम्भिक अनुभवों से पहचानना शुरू करें। यदि प्रौढ़

प्रारम्भ में ही एक-दूसरे की आवश्यकता की पहचान कर लेते है तो यह एक दूसरे की सहायता के लिए तत्पर रहते है जो व्यक्तिगत व सामाजिक स्तर पर उन्हें खुश रखती है।

3. पृष्ठभूमि में समानता-यदि वैवाहिक जोड़े की पारिवारिक, सामाजिक व आर्थिक पृश्ठभूमि समान होती है तो समायोजन आसान हो जाता है। इसके विपरीत भिन्न आर्थिक सामाजिक एवं पारिवारिक पृश्ठभूमि के कारण समायोजन में कठिनाई होती है। भिन्न पृश्ठभूमि वाले वैवाहिक जोड़े को समायोजन करने में समय लगता है।
4. सामान्य रूचियाँ-अगर वैवाहिक जोड़े की आपसी रूचियाँ लगभग समान होती है तो आपसी समझदारी बढ़ने के साथ वो जीवन में आनन्द अनुभव करते हैं जो उनके बेहतर समायोजन में मदद करता है।
5. मूल्यों में समानता-अधिकाशः यह देखा गया है अच्छे समायोजित वैवाहिक जोड़ो में बहुत से मूल्य समान होते है जो उन्हें कई बार समान पृष्ठभूमि के कारण भी प्राप्त हो जाते है। इसके विपरीत पृष्ठभूमि एवं मूल्यों में टकराव वैवाहिक समायोजन को कमजोर बनाता है।
6. पति-पत्नी की भूमिका का निर्वहन-समायोजन में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी भूमिका होती हैं व्यक्ति पत्नी अगर अपनी भूमिकाओं को परिवार के अनुरूप निभाते है और एक दूसरे की अपेक्षाओं पर खरे उतरते है तो समायोजन सुदृढ़ होता है। यदि पति-पत्नी अपनी भूमिका एवं एक दूसरे को अपेक्षाओं का सम्मान नहीं करते है तो इसके परिणाम दुःखत होते है।

उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए कहा जा सकता है कि वैवाहिक जीवन की सुख शांति के लिए या सफलता के लिए जीवन संगिनी/साथी के साथ बेहतर समायोजन करना एक-दूसरे के मूल्य विचार व पृष्ठभूमि से अवगत होना व पति-पत्नी की भूमिका का सामाजिक नियमों,प्रथाओं एवं कानूनों के साथ बेहत्तर निर्वहन करना अनिवार्य है। इसी के साथ भिन्न पृष्ठभूमि, भिन्न मूल्य, भिन्न विचारधारा एवं प्रत्याक्षा होने के पश्चात् भी प्रौढो को जीवन साथी के साथ समायोजित ढ़ग से रहना सीखना चाहिए, एक-दूसरे का भावनाओं का सम्मान करते हुए एक सुव्यवस्थित परिवार के निमार्ण के लिए बेहत्तर समायोजन में योगदान देना चाहिए।

3.6 ` मातृत्व एवं पितृत्व के प्रति समायोजन (Adjustment to Parenthood)

माता-पिता बनने के साथ ही प्रौढ़ की बहुत सी जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। बच्चे के जन्म के साथ ही पति-पत्नी अपने तौर-तरीको में बहुत से बदलाव आने लगते है। उनकी रोजमर्रा की जीवन पद्धति में बदलाव आने लगते है। गर्भावस्था से लेकर जन्म एवं पालन पोण तक उन्हें बहुत से नये समायोजन करने पड़ते है। जैसे- बच्चे की ढीक से परवरिश करना, उसके स्वास्थय के बारे में चेतन्य रहना, मूल्य

संस्कार व नैतिकता की शिक्षा देने के प्रयत्न करना, आदि इन तमाम कार्यो के लिये माता-पिता को बहुत सहयोगात्मक रवैया अपनाना पड़ता है ताकि बच्चे का समुचित विकास हो सके इसके विपरीत परिस्थितयां होने पर समायोजन मुश्किल होता है। यहाँ यह विचारणीय प्रश्न है कि मातृत्व व पितृत्व के प्रति समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक कौन से हैः-

मात्त्व व पित्त्व के प्रति समायोजन को प्रभावित करने वाले कुछ कारक (Some important factor influencing adjustment to Parenthood)-

a) **पितृत्व के सम्बन्ध में अभिवृत्ति-**महिलाओं का मातृत्व के प्रति अभिवृत्ति उनकी गर्भावस्था के दौरान शारीरिक एवं संवेगात्मक स्थितियों पर निर्भर करती है। यदि मानसिक व शारीरिक रूप से वह बच्चा चाहती है तो उसकी मनोवृत्ति कष्ट सहकर बच्चे का स्वागत करने की होती है। अगर वह बच्चा मनचाही सन्तान हो तो गर्भावस्था में से अहिंसा का दृष्टिकोण उसके प्रति प्रतिकूल होता हो जो कई बार जन्म के साथ सुधर भी जाता है परन्तु दूसरी स्थिति में सार्थक समायोजन करना मुश्किल होता है।

b) **मातृत्व पितृत्व के योग्य मनोवृत्ति-**प्रौढ़ बेहतर तरीके से तब समायोजन करते है जब वो दोनों ही अपने और से बच्चा चाहते है और यह मानते है कि बच्चा वैवाहिक जीवन की खुशी है। इस स्थिति में पति-पत्नी बच्चे के जन्म के लिए मानसिक रूप से तैयार रहते है। इसके विपरीत यदि दोनों कैरियर समर्पित होते है या बच्चे को किसी कारणवश पसंद नही करते तो ऐसी स्थिति में समायोजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

c) **माता-पिता की आयु-छोटी आयु मे माता-**पिता बनने पर पति पत्नी अपने उत्तरदायिवों को गम्भीरतापूर्वक नही लेते जबकि प्रौढ़ावस्था में माता-पिता बनने पर व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों को बेहतर ढ़ग से निभाया जाता है और अच्छा समायोजन देखने को मिलता है। मध्य प्रौढ़ावस्था में माता-पिता बनने पर इन जोड़े में चिन्ता ज्यादा देखी गयी है।

d) **बच्चों की संख्या-**समायोजन बच्चों की संख्या पर भी निर्भर करता है। यदि प्रौढ़ दो बच्चों की संख्या आदर्श समझते है और उनके उतने ही बच्चे है तो समायोजन बेहतर होता है। इसके विपरीत यदि बच्चों की संख्या उनके चाहत से ज्यादा है तो उन्हें उसकी परवरिश के लिए ज्यादा संघर्ष करना पड़ता है जिससे उनका समायोजन प्रभावित होता है।

e) **भूमिका परिवर्तन सम्बन्धी अभिवृत्ति-**सामान्य तौर पर पति-पत्नी को माता-पिता बनने के पश्चात अपनी पुरानी भूमिकाओं में परिवर्तन कर ‘‘परिवार केन्द्रित’’ भूमिका निभानी होती है। जो पति-पत्नी अपनी सन्तान के लिए माता-पिता की भूमिका सकारात्मक रूप से नहीं निभा पाते है उन्हें पारिवारिक जीवन में समायोजन करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ता हैं

f) **माता-पिता की भावनाओं में पर्याप्तता-**माता-पिता यदि बच्चे को पूर्ण मनोयोग से प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्य को अच्छी भावनाओं से करते हैं तो समायोजन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत बच्चे के प्रशिक्षण के दौरान माता-पिता में मतभेद होते है उनके प्रशिक्षण देने में चिन्ता का भाव दिखाई देने पर समायोजन में नकारात्मक प्रभाव पड़ता हैं।

g) **बच्चों की मनोदशा का प्रभाव-** बच्चों की मनोदषा का भी माता-पिता के समायोजन पर प्रभाव पड़ता है। बच्चे अगर आसानी से सम्भाले जाते हैं और माता-पिता को जिम्मेदारी एवं लगाव व अहसासकराते है तो ऐसे बच्चे माता-पिता के लिए पुरुष्कार के समान होते है जो मातृत्व-पितृत्व के प्रति अच्छी भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करते हैं।

वर्तमान समय में बदलती जीवन शैली, मूल्य व समाज के बदलते स्वरूप ने माता-पिता के सम्बन्धों में भी परिवर्तन किया है। कैरियर की महत्वाकांक्षा में जहाँ एक ओर बड़ी उम्र में विवाह करने का चलन बढ़ रहा है। वही प्रौढ़ों में मतभेद झगड़े आदि में एकाकी माता-पिता वाले परिवारों में वृद्धि हो रही हैं। इन सब के परिणाम स्वरूप समायोजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है संक्षिप्त रूप से इनकी चर्चा यहाँ की जा रही है।

3.6.1 एकल माता-पिता (Single Parenthood) अधिकांष परिवारों में एकल माता-पिता तब होते है जब पति-पत्नी में से किसी की मृत्यु हो जाये, या पति-पत्नी अपने मतभेदों के कारण एक दूसरे से अलग रहते हैं, या तलाक ले लेते है। ऐसी स्थिति में किसी एक पर (या माता पर अथवा या पिता पर) बच्चों के पालन पोषण की जिम्मेदारी होती है। वर्तमान समय में अधिकतर उच्च वर्ग की महिलायें अपनी महत्वाकांक्षी कैरियर के कारण बच्चे पैदा करने से बच रही है। ऐसी स्थिति में वो भी बच्चे गोद लेकर एकल माता-पिता की भूमिका निभा रही है। बच्चों के लालन-पालन में एकल माता पिता को आवश्यकता से अधिक मेहनत करनी पड़ती हैं, क्योंकि उन्हें घर एवं बाहर के कार्य स्वयं के बलबूते करने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में कई बार नौकरी पेशा एकल माता-पिता अपने बच्चों को ‘डे केयर सेन्टर में रखना पंसद करते हैं। जबकि पूर्व में यह कार्य महिलायें जैसे-घर की ताई, चाची, दादी आदि किया करते थे। वर्तमान समय में एकल माता के साथ एकल पिता भी अपने बच्चों की परवरिष में सकारात्मक भूमिका निभा रहे हैं वो अपने बच्चों को सुविधाओं के साथ बेहतर समय देने की कोषिष करते हैं। लेकिन ज्यादा श्रम, करने के पश्चात भी कई बार उन्हें यह अहसास होता है कि वह अपने बच्चों के साथ उतना अच्छा समायोजन नही कर पा रहे है जितना कि (पति-पत्नी) दोनों मिलकर समायोजन करते हैं। इस वजह से कई बार एकल माता-पिता में असुरक्षा की भावना उभर आती है जो बच्चों में अत्याधिक लाड़ प्यार, अत्याधिक दण्ड के रूप में परिलक्षित होती है।

3.7 वैवाहिक समायोजन का मूल्यांकन (Assessment Marital Adjustment)-

वैवाहिक समायोजन के मूल्यांकन के लिए हम जीवन स्तर की एक पद्धति को अथवा व्यवहार के एक प्रकार के स्वरूप को कारगर नहीं मान सकते और न ही यह कि विवाह के पश्चात परिवार के मात्र एक अथवा दो सदस्य ही संतोष का अनुभव करें, दामप्त्य जीवन के सफल मूल्यांकन के लिए आवश्यक है कि सम्पूर्ण परिवार के सुख एवं सन्तुष्टि का आंकलन किया जा सके।

जैसे-एक व्यक्ति यदि अपने कैरियर में काफी सफलता व उपलब्धियाँ पाता है तो उसे इस बात से खुशी मिलती है परन्तु उसी क्षण ही उसे यह अहसास होता है कि इन उपलब्धियों को प्राप्त करने के कारण वह अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों नहीं निभा पाया जो उसके वैवाहिक जीवन के प्रति असंतोष उत्पन्न करती है।

3.7.1 वैवाहिक समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक (Conditions contributing to marital adjustment) - वैवाहिक समायोजन को प्रभावित करने वाले निम्न कारक हैं-

- **लैंगिक समायोजन-** यदि वैवाहिक जोड़े एक दूसरे के प्रति रूचि दिखाते हैं, लगाव रखते हैं और यौन सम्बन्धों से सन्तोश का अनुभव करते है उसका समायोजन अच्छा होता है इसके विपरीत लैंगिक समायोजन यदि भली भाँति नहीं होता है तो पति-पत्नी के सम्बन्धों में कड़वाहट आ जाती है।
- **स्थिर आर्थिक स्तर-** समायोजन के मूल्यांकन का दूसरा कारक अच्छी एवं स्थिर आर्थिक स्थिति होती है। यदि प्रौढ़ अपने घर का रहन-सहन अच्छा रखते हैं तथा घर को व्यवस्थित रखने तथा अपने बच्चों के भविष्य को बेहत्तर बनाने के लिए और कमाते हैं और इस कार्य में अगर उनकी पत्नियाँ भी सहयोग करती हैं तो वैवाहिक समायोजन में खुशी दिखाई देती है। इसके विपरीत अगर व्यक्ति अवस्ताविक अपेक्षाओं में जीवन जीते हैं, अपनी कार्यक्षमता के अनुसार कार्य नहीं करते हैं, अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए प्रयत्न नहीं करते तो ऐसे वैवाहिक जोड़ो को समायोजन करने में कठिनाई होती है।
- **अवास्तविक अपेक्षायें-** कई बार वैवाहिक जोड़ों में अवास्तविक अपेक्षायें देखने को मिलती हैं। वो विवाह को रोमांटिक जीवन समझते हैं और यह मानते है कि विवाह में खुशियाँ ही खुशियाँ है ऐसे जोड़ो का जब वैवाहिक जीवन की यर्थाथता से सामना होता हैं और उनके सम्मुख बहुत सी जिम्मेदारियाँ आती है तो उनके लिए उस स्थिति में समायोजन करना मुष्किल हो जाता है क्योंकि वह उन जिम्मेदारियों को मानसिक रूप से निभाने के लिए तैयार नहीं होते।

- **बच्चों की संख्या-**विवाह के पश्चात बच्चों को लेकर पति-पत्नी जो सहमति बनती है वह भी समायोजन पर प्रभाव डालती हैं। यदि वह दो बच्चों का आदर्श अपनाते है और दो ही बच्चे होते है तो उनका वैवाहिक समायोजन सकारात्मक होता है। यदि संख्या बढ़ जाती है तो उन्हें उन बच्चों की जरूरतों के लिए ज्यादा प्रयास करने पड़ते है जो समायोजन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।
- **परिवार में जन्म क्रम स्थिति-** जन्म क्रम स्थिति से भी वैवाहिक समायोजन का मूल्यांकन किया जाता है। मनोवैज्ञानिक ये मानते है कि जन्म क्रम का प्रभाव समायोजन को प्रभावित करता है जैसे- यदि पति परिवार में बड़ा पुत्र व पत्नि परिवार में छोटी पुत्री होती हैं तो समायोजन बेहतर होता है क्योंकि पति (जो पुत्र है) को अपने छोटे भाई-बहनों को सम्भालने व प्रभुत्व करने की आदत बन जाती है जबकि पत्नी(जो अपने घर में छोटी पुत्री है) को अपने बड़े भाई-बहनों से ऐसे ही व्यवहार की अपेक्षा होती है इसके विपरीत यदि वैवाहिक जोड़े जन्म क्रम में दोनों (पति-पत्नी) बड़े हो या छोटे तो सामंजस्य कठिन होते है। उपरोक्त दृष्टिकोण के संदर्भ में मनोवैज्ञानिको में मतभेद भी है क्योंकि मात्र जन्म क्रम समायोजन की कसौटी नहीं होता है।
- **ससुरालियों के साथ सम्बन्धों का प्रभाव-**वैवाहिक जोड़े के अपने ससुराल वालों से कैसे सम्बन्ध हैं। यह महत्वपूर्ण होता यदि अच्छे सम्बन्ध है तो उसका फायदा नव प्रौढ़ो को मिलता है। वैवाहिक जीवन में आने वाली समस्याओं एवं मुश्किलों में सास-ससुर व अन्य सम्बन्धियों से उन्हे सुलझाने में मदद मिल जाती है। इसी के साथ बच्चों के पालन-पोषण में उनकी मदद व अनुभवों का लाभ प्राप्त होता है। जिससे वैवाहिक समायोजन सुदृढ़ होता हैं इसके विपरीत ससुरालियों से कमजोर सम्बन्ध तनाव उत्पन्न करते है और समायोजन को कमजोर बनाते है।

3.7.2 सफल वैवाहिक जीवन की कसौटियाँ (Criteria of successful marital adjustment)-एक सुखी दम्पत्ति को सन्तोष इस बात से मिलता है कि वह अपने वैवाहिक जीवन में अपनी भूमिका बेहतर ढ़ग से निभा रहे हैं। इस बात से उनका एक दूसरे के प्रति प्रेम अधिक स्थिर एवं परिपक्व होता है वो अपने लैंगिक समायोजन एवं मातृत्व-पितृत्व की भूमिका में बेहतर समायोजन करते हैं।

- **बच्चे व माता-पिता के मध्य अच्छे सम्बन्ध-** बच्चे व माता-पिता के मध्य अच्छे सम्बन्ध होने का प्रमाण है कि वैवाहिक जीवन बेहत्तर है। यदि माता-पिता व बच्चों के मध्य अच्छे सम्बन्ध नहीं है, घर का परिवेष तनाव भरा है तो इसका मतलब है कि वैवाहिक समायोजन कठिन व कमजोर है।

- बच्चों का अच्छा समायोजन- जो बच्चे अपने स्कूल, अपने दोस्तो तथा अपने पास-पड़ौस में आसानी से समायोजित हो जाते हैं वह इस बात के सबूत है कि उनके माता-पिता में अच्छे सम्बन्ध हैं और माता-पिता अपने बच्चों के प्रति बेहतर समायोजन करते हैं। इसके विपरीत जो बच्चे अपने पास पड़ौस,स्कूल एवं मित्रों के साथ ठीक से समायोजित नहीं होते हैं वो इस बात को सिद्ध करते हैं कि उनके माता-पिता में अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं।
- एक-दूसरे के प्रति समपर्ण- एक सफल वैवाहिक जीवन में परिवार खुश रहता है, एक-दूसरे के साथ समय बिताना पसन्द करता है, एक अच्छे परिवार के सम्बन्ध वैवाहिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों से ही बनने लगते हैं जब पति-पत्नी एक दूसरे के प्रति समर्पित रहते हैं तथा एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल रहते हैं व परस्पर सहयोगात्मक रवैया रखते है तभी उनका वैवाविक जीवन स्थिर रहता है। और एक घर का निर्माण होता है।

3.8 सारांश-

समायोजन जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। एक अनुशासित एवं व्यवस्थित जीवन प्रणाली के लिए बेहतर समायोजन होना आवश्यक है। व्यक्ति को जीवन के विभिन्न चरणों में विभिन्न प्रकार के समायोजन करने पड़ते हैं। प्रस्तुत इकाई में प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था के समायोजन पर चर्चा की गयी है- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यवसायिक एवं परिवारिक समायोजन एक कठिन प्रक्रिया है क्योंकि इस अवस्था में कैरियर, विवाह एवं परिवार की जिम्मेदारियाँ मिलने लगती है। व्यवसायिक समायोजन में व्यक्ति के सम्मुख जहाँ व्यवसाय के चुनाव, व्यवसाय में स्थिरता तथा कार्य स्थल में कार्य समायोजन करने की चुनौती होती है। वही वैवाहिक जीवन साथी एवं संगिनी के साथ समायोजन करना पड़ता है। कई बार यह समायोजन तब कठिन हो जाता है जब दोनों (पति -पत्नी) अलग पृश्ठभूमि, भिन्न मूल्यों एवं विचारों के होते है तथा जब दोनों की रूचियों भी अलग होती है। इसके विपरीत समान रूचियाँ, समान पृष्ठभूमि व मूल्यों के समान होने पर समायोजन में सकारात्मक प्रभाव पड़ता हैं। परिवार की वृद्धि अर्थात् बच्चों के जन्म के साथ ही मातृत्व व पितृत्व के प्रति समायोजन प्रारम्भ हो जाता है। इस समायोजन को प्रभावित करने वाले कारकों में मुख्यतः मातृत्व पितृत्व के योग्य मनोवृत्ति, माता-पिता की आयु, बच्चों की कुल संख्या के साथ माता-पिता बच्चों के साथ कैसी भूमिका निभाते है और अपने बच्चों के प्रति कैसी भावनायें रखते है इसका प्रभाव उनके समायोजन पर दिखाई देता है। अन्त में वैवाहिक समायोजन का मूल्याकंन करते हुए वैवाहिक समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक जैसे-लैंगिक समायोजन, स्थिर आर्थिक स्थिति, अवास्तविक अपेक्षायें, परिवार में जन्म क्रम स्थिति व ससुरालियों के साथ

वैवाहिक जोड़े के सम्बन्धों पर अध्ययन करते हुए एक सफल वैवाहिक जीवन की कसौटियों का उल्लेख किया गया है।

3.9.1 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समायोजन से आप क्या समझते है? प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यवसायिक एवं पारिवारिक समायोजन कठिन होता है स्पष्ट कीजिये?
2. वैवाहिक समायोजन को प्रभावित करने वाले कारणों पर चर्चा करते हुए वैवाहिक समायोजन का मूल्याकंन कीजिये?
3. माता-पिता के समायोजन का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है स्पष्ट कीजिये?
4. मातृत्व-पितृत्व के प्रति समायोजन से आप क्या समझते है? मातृत्व -पितृत्व के समायोजन को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिये?
5. टिप्पणी लिखिये-
    a. व्यवसायिक समायोजन
    b. वैवाहिक समायोजन
    c. एकल-माता पिता

3.10 सदंर्भ-सूची

1. भाई योग्रेन्द्रजीत-विकासात्मक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
2. Elizabeth B. Hurlock-Developmental Psychology TATA McGraw-Hill Edition Private Limited –New Delhi
3. डा0 राम जी श्रीवास्तव डा0 गाजी गौस आलम-आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास बॅग्लो रोडए दिल्ली
4. भाई योगेन्द्रजीत-मानव विकास का मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
5. डा0 पी0 मिश्र-आज का विकासात्मक मनोविज्ञान साहित्य प्रकाशन आगरा
6. Raymond- Psychological Studies of Human Development
7. Brown CA, R feldberg, E.M. Foxamd I Rohan- Divorce chance of a new life time, journal of social issues(1976)

इकाई 4. मध्यावस्था एवं वृद्धावस्था: विशेषताएँ, शारीरिक मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक परिवर्तन इकाई की संरचना (Middle Age and Old Age : Characteristics ,Physical, Psychological and Social Changes)

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मध्यावस्था में होने वाले शारीरिक, मानसिक व सामाजिक परिवर्तन

4.4 मध्यावस्था की समस्याएँ

4.5 वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक, मानसिक व सामाजिक परिवर्तन

4.6 वृद्धावस्था की समस्याएँ

4.7 मध्यावस्था की विशेषताएँ

4.8 वृद्धावस्था की विशेषताएँ

4.9 सारांश

4.1 मूल्यांकन प्रश्न

4.11 संदर्भ ग्रन्थ

4.1 प्रस्तावना

अन्य अवस्थाओं की तरह मध्यावस्था का भी अपना महत्व है। इस अवस्था में भी विभिन्न प्रकार की समस्याएँ होती है जिसके लिए इस आयु के प्रौढ़ों को समायोजन करना पड़ता है। इस अवस्था में कुछ शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक परिवर्तन होते है। इस अवस्था का विस्तार 40-60 वर्ष का होता है। यह एक संक्रमणकाल की अवधि होती है। इसमें प्रौढ़ प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था के मध्य स्थित होता है उसे अपनी संतानों तथा माता-पिता दोनों का दायित्व निभाना पड़ता है। इस अवधि में कुछ प्रौढ़ दादा-दादी भी बन जाते है जिससे उनकी जिम्मेदारियाँ और बढ़ जाती है। पूरे जीवन विस्तार में यह सबसे समस्यात्मक अवस्था मानी जाती है। इसमें स्वास्थ्य का भी काफी महत्व होता है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन तीव्र गति से होते है। शक्ति क्षीणता आती है। प्रौढ़ थका-थका सा महसूस करता है। उसकी लगन , धैर्य तथा संयम में कमी दिखायी पड़ती है। इस अवस्था में भी लिंगसम्मत भूमिकाओं को सीखकर उनका निर्वाह करना पड़ता है। उसकी रूचियों, मूल्यों में भी परिवर्तन होता है। वृद्धावस्था जीवन विस्तार की अन्तिम अवधि होती है। 60 वर्ष की आयु मध्यावस्था एवं वृद्धावस्था को बाँटने वाली आयु कही जाती है। यहीं से लोगों में विकासात्मक परिवर्तन दिखायी देने लगते है। प्रथम अवस्था 60-70 वर्ष की आयु की हाती है तथा इसे प्रारम्भिक वृद्धावस्था (Early old age) कहते है। दूसरी अवस्था को (Advanced old age) अग्रिम वृद्धावस्था के नाम से जानी जाती है इसकी शुरूआत 70 वर्ष पर होती है तथा अन्तिम समय यानि मृत्यु तक चलती है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- मध्यावस्था व वृद्धावस्था में होने वाले परिवर्तनों को जान पायेंगे।
- मध्यावस्था व वृद्धावस्था की क्या-क्या विशेषतायें है। बता सकेंगे।
- मध्यावस्था व वृद्धावस्था की कौन-कौन सी समस्याएँ है। समझ सकेंगे।

4.3 मध्यावस्था में होने वाले शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व सामाजिक परिवर्तन (Physical, Psychological and Social Changes during Middle age)

मध्यावस्था में निम्नलिखित परिवर्तन प्रदर्शित होते है। ये परिवर्तन उसके शारीरिक, सामाजिक, रूचियों तथा लैंगिकता से सम्बन्धित होते है।

- **शारीरिक परिवर्तन (Physical Changes)**-इस अवस्था में शारीरिक क्षमता में परिवर्तन दिखायी पड़ता है। शारीरिक हावभाव से भी शारीरिक परिवर्तन का पता चलता है। मध्यावस्था में मोटापा उनके पेट के पास संचित होता है। इस अवस्था में सिर के बाल सफेद होने लगते है। महिलाओं मे दाढ़ी एवं ओठ के पास कुछ बाल उगे हुए दिखायी देते है। सिर के बाल हल्के दिखायी देने लगते है।। नाक के बाल तथा आँख एवं कान के बाल काफी सख्त होते है। 50 वर्ष की आयु में दोनों पुरूष तथा महिलाओं के बाल सफेद होने लगते हें। शरीर की चमड़ी में भी काफी परिवर्तन दिखायी पड़ता है। चेहरे, गर्दन, भुजाओं तथा हाथ की त्वचा सिकुड़ी हुई तथा रूक्ष होती है। आँखों के पास गड्ढे नजर आने लगते है। कंधा गोलीय लिए हुए होता है। शरीर में शिथिलता तथा संकुचन दिखायी पड़ता है। पेट में उभार दिखायी देता है और व्यक्ति छोटा दिखायी देने लगता है। अधिकतर मध्य आयु के व्यक्तियों की माँसपेशियाँ कोमल हो जाती है। विशेषकर दाढ़ी, भुजाओं का ऊपरी भाग तथा पेट के पास की माँसपेशियाँ कोमल हो जाती है। कुछ मध्यावस्था के लोगों में जोड़ों में दर्द होता है उनका चलना फिरना मुश्किल हो जाता है। वे चीजों को अनुपयुक्त तरीके से चलाते है। दाँत पीले हो जाते है तथा कभी-कभी पूरे दाँत वैकल्पिक दाँत से भर दिये जाते है। मध्यावस्था में लोगों की आँखें चमकदार कम होती है। तथा आँखों के पास कोने में श्लेष्मा दिखायी पड़ता है। इस अवस्था में शारीरिक परिवर्तन के फलस्वरूप उनके शारीरिक हावभाव भी बदल जाते है। उनके आकर्षक शरीर अब कम आकर्षक लगने लगते है। शारीरिक शक्ति में भी कमी आती है। शारीरिक परिवर्तन का असर सामाजिक, आर्थिक स्तर से भी निर्धारित होता है। प्रायः यह देखा जाता है कि उच्च, सामाजिक, आर्थिक स्तर के लोग निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले लोगों की तुलना में ज्यादा जवान दिखायी पड़ते है। इसका कारण सुविधाओं का अवसर होना है। इस अवस्था में उनकी संवेदी योग्यताओं में भी कमी पायी जाती है, दृष्टि क्षमता प्रायः कम होने लगती है। नजदिक का न देखने की क्षमता भी जन्म लेती है और कान से भी कम सुनाई पड़ने लगता है। कुछ लोग मोतियाबिन्द से भी पीड़ित हो जाते है। घ्राण संवेदना में भी कमी परिलक्षित होती है जो पुरूषों में ज्यादा दिखायी देता है इसका कारण इस अवस्था में अधिक नाक में बाल का

उगना है। स्पर्श तथा दर्द की संवेदना में कमी मिलती है। इस अवस्था में शरीर के आंतरिक अंगों में भी परिवर्तन नहीं दिखायी पड़ता है। ज्यादातर अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की क्रियाशीलता में कमी आती है। शारीरिक क्रियाओं में भी परिवर्तन मिलता है।

- **लैंगिक परिवर्तन (Sexual Changes)**-मध्यावस्था में पुरूषों तथा महिलाओं में लैंगिक परिवर्तन भी देखे जाते है। महिलाओं में मासिक श्राव का बन्द होना उसके लैंगिक परिवर्तन का प्रथम संकेत होता है। सम्प्रतितः वे बच्चा जनने की क्षमता खो बैठती है। उस अवस्था में पुरूषों तथा महिलाओं में सांवेगिक प्रतिबल ज्यादा होते है। जबकि शारीरिक व्यतिक्रम कम दिखायी देते है यह पुरूषों तथा महिलाओं के लिए सत्य है। इसी समय पुरूषों के शारीरिक क्षमता में कमी आती है इसे ‘Climacetric’ कहते है। पुरूषों की आवाजें तेज हो जाती है। शरीर पर तथा चेहरे पर बाल कम दिखायी देते है। पूरा शरीर गोलाई लिए हुए रहता है विशेषकर पेट तथा हिप्प में ऐसा देखने को मिलता है। पुरूषत्व में कमी आने के कारण उसमें नपुंसकता आने लगती है। ज्यादातर मध्य आयु के पुरूष इस अवस्था में उदासी, चिन्ता, चिडचिड़ापन, सरदर्द, पाचन शक्ति में गड़बड़ी, भीरूता तथा अनेक प्रकार के सामान्य दर्दों की शिकायत करते है। इस अवस्था में मेनोपॉज के समय ज्यादातर महिलाएँ परेशानी अनुभव करती है। मास्टर्स और जोहेन्सन (Masters and Johnsons, 1974) का मानना है कि लैंगिक संसर्ग में कमी आने का प्रथम एक कारक मनोवैज्ञानिक होता है न कि शारीरिक। यह कारक होता है लैंगिक सम्बन्धों की पुनरावृत्ति से नीरसता के कारण (Monotony of a repetitions sexual relationship)
- **मानसिक परिवर्तन(Mental Changes)- इस अवस्था में** ऐसा माना जाता है कि शारीरिक परिवर्तन के साथ-साथ मानसिक परिवर्तन भी देखे जाते है। इस सम्बन्ध में कुछ दीर्घकालिक अध्ययन किये गये है जो अविश्वास को वैध नहीं मानते हे(Dayley, 1965, Papalia, Delnad Bielby, 1974)। टरमन एवं ओडेन (1959) का अध्ययन जो एक पुरूष एवं महिलाओं के समूह पर स्कूल जाने की अवस्था से लेकर मध्यावस्था के मध्य तक किया गया। इस अध्ययन ने यह प्रदर्शित किया कि मध्यावस्था के दौरान मानसिक क्षमता में कमी नहीं परिलक्षित होती है। एक अनुगमन अध्ययन इस अध्ययन में 50 वर्ष बाद किया गया तो यह पाया गया कि मध्यावस्था में मानसिक क्षमता में ह्रास होता है (Macroff,1975)। कंगास तथा ब्राडवे के अध्ययन से इस बात का संकेत मिलता है कि मध्यावस्था में बौद्धिक क्षमता में थोड़ी वृद्धि होती है। यह वृद्धि उन्हीं लोगों में पायी जाती है जो पहले भी उच्च मानसिक क्षमता वाले रहे है। परन्तु यह अध्ययन एक छोटे समूह पर किया गया था यानि इस अध्ययन में मात्र 48

प्रयोज्य थे तथा इनका परीक्षण स्कूल अवस्था से लेकर जूनियर हाईस्कूल की आयु में तथा युवा प्रौढ़ावस्था में किया गया था। अन्त में इनका परीक्षण उस समय किया गया जब वे 39-44 वर्ष की उम्र के थे। अन्त में मध्यावस्था के दौरान एक अनुगमन अध्ययन भी किया गया उसी में ऐसा परिणाम मिला। टरमन एवं ओडेन (1959) के अध्ययन से यह पता चलता हे कि उच्च मानसिक बुद्धि लब्धि वाले व्यक्ति में उनकी बुद्धि मे थोड़ी सी बढ़ोत्तरी होती है । इसका कारण यह होता है कि पुरूष महिलाओं की तुलना में व्यावसायिक रूप से ज्यादा सावधान रहते है।

- **रूचियों में परिवर्तन**(Change in Interests)-मध्यावस्था में पुरूषों तथा महिलाओं की रूचियों में भी परिवर्तन होता है। इस अवस्था में रूचियों का विस्तार न होकर रूचियों में कमी या संकीर्णता आती है। इस अवस्था में रूचियों का समारोपण (Shift)सुन्दर पोशाकों की तरफ होता है। वे इस अवस्था में अच्छे-अच्छे फैशनेबुल कपड़े पहनना चाहते है जिससे जवान लग सकें। इस अवस्था में उनकी रूचियों का समारोपण धन की तरफ भी होता है । मध्यावस्था की महिलाओं की रूचियां पुरूषों की अपेक्षा धन की तरफ ज्यादा होती है। यह उन्हें आत्म सुरक्षा भी प्रदान करता है। बहुत सारे प्रौढ़ मध्यावस्था में धर्म तथा धार्मिक क्रियाओं में रूचि रखते है।
- **सामाजिक परिवर्तन** (Social Changes)**-**मध्यावस्था मे प्रायः सामाजिक जीवन की रूचियों का नवीनीकरण होता है। जैसे ही पारिवारिक जिम्मेदारी से दम्पत्ति मुक्त होते है उन्हें ऐसा लगता है कि अब उनके पास सामाजिक क्रिया-कलापों हेतु ज्यादा समय है। सम्प्रतितः वे सामाजिक क्रिया कलापों में प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में घर तक ही सीमित रहती थी अब वे घर से बाहर निकलकर सामाजिक क्रियाकलापों में भाग लेती है।। इस समय तक उनके बच्चे भी विकसित हो जाते है तथा उनका अपना घर भी होता है। सामाजिक क्रियाएं मध्यावस्था में ज्यादातर सामाजिक स्तर से प्रभावित होती है। उच्च सामाजिक स्तर के व्यक्ति निम्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियों की तुलना में इस अवस्था में ज्यादा क्रियाशील होते है। निम्न स्तर वाले व्यक्तियों के साथ कोई सामुदायिक समूह नहीं होता है बल्कि वे केवल उन समूहों से मिलते है जिसके वे सदस्य होते है। उनके मित्र कम होते है। केवल उनके पड़ोसी ही मित्र होते है। ज्यादातर उनके सामाजिक सम्पर्क उनके पारिवारिक सदस्यों या पड़ोसियों से होते है जैसा कि Packard 1974 कहते है "They are socially isolated"। विधुर, विधवा, तथा तलाकशुदा पुरूष तथा महिलाएँ उसी तरह से क्रियाशील रहते है जैसे की विवाहित व्यक्ति । इस तरह से देखा जाये तो यह पता चलता है कि मध्यावस्था में सामाजिक क्रिया-कलापों में कमी नहीं आती है। सामाजिक समायोजन को कुछ कारक प्रभावित करते है जिसमें प्रमुख कारक उनका अच्छा

स्वास्थ्य होना, सामाजिक क्रियाओं के प्रति तत्पर होना, सामाजिक कौशल का होना, सामाजिक स्तर का प्रभाव आदि प्रमुख है।

4.4 मध्यावस्था की समस्याएँ (Hazards of Middle age)

1. **वैयक्तिक समस्या** (Personal Hazards) इस अवस्था मं वैयक्तिक समस्याओं का जाल बिछा हुआ होता है। मध्यावस्था में व्यक्ति नयी भूमिकाओं तथा नयी जीवन प्रणाली से काफी परेशान रहते है। इन सभी समस्याओं में मुख्यतः 6 समस्याएँ गम्भीर समस्याएँ पायी जाती है।
2. **सामाजिक समस्याएँ**(Social Hazards)-वैयक्तिक समायोजन की तुलना में सामाजिक समायोजन परम्परागत विश्वास और रूढ़ियुक्तियों से कम प्रभावित होता है। सामाजिक समायोजन के परम्परागत विश्वास कुछ हद तक प्रभावित करते है। इस सम्बन्ध में यह कहना ज्यादा उचित होगा कि जो पुरूष या महिलाएँ अपने विद्यालयीय जीवन में नेतृत्व नहीं दे पाये होते है वे ये समझते है कि अब मध्यावस्था में यह नेतृत्व शैली की उपलब्धि मुश्किल है। सामाजिक समायोजन को जो कारक प्रभावित करते है। उनमें प्रमुख रूप से Rocking chairphilosophy , Unattractive appearance , lack of social skills , Preference for family , financial problems , family pressures , desire for popularity and social mobility होते है।
3. **व्यावसायिक समस्याएँ** (Vocational Hazards)- जबकि ज्यादातर व्यावसायिक समस्याएँ प्रौढ़ावस्था की व्यावसायिक समस्याओं के समान ही होती है।। लेकिन मध्यावस्था की कुछ व्यावसायिक समस्याएँ अलग तरह की भी होती है।। जिनके प्रति मध्यावस्था के लोगों को समायोजन करना पड़ता है। ये समस्याएँ उनके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सृजनात्मकता में कमी से भी उनका व्यावसायिक समायोजन खराब होता है। व्यावसायिक सृजनात्मकता में कमी से वे अपने लक्ष्य उपलब्धि में पीछे रह जाते है जिससे वे असन्तुष्ट एवं उदास हो जाते है।

4.5 वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व सामाजिक परिवर्तन (Physical, Psychological and Social Changes during old age)

अन्य अवस्थाओं की भांति इस अवस्था में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, व्यावसायिक तथा रूचियों में परिवर्तन देखे जा सकते है।

1. **शारीरिक परिवर्तन** इस अवस्था में शारीरिक परिवर्तन की गति तीव्र होती है। शरीर के सभी भागों में परिवर्तन दिखायी देने लगता है। शारीरिक क्षीणता दूर से ही प्रदर्शित होती है। शारीरिक हावभाव बदल जाते है। चेहरे का परिवर्तन शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा जल्दी होता है। मस्तिष्क के क्षेत्र में जो परिवर्तन होता है वह है नाक का भाग बढ़ जाना, दाँत टूटने के कारण मुँह की आकृति बदल जाती है। आँखों में चमक नहीं रह जाती है तथा लगता है कि आँखें हमेशा पानी लिये हुए है। त्वचा में भी झुर्रियाँ दिखायी देती है। त्वचा पतली हो जाती है। त्वचा में काले धब्बे भी दिखायी देने लगते है। सिर के बाल सफेद होने लगते है।। बाल कड़े हो जाते है। कन्धे झुककर छोटे लगने लगते है। केन्द्रिय तन्त्रिका तन्त्र में भी परिवर्तन शुरू हो जाता है। सर्वप्रथम इसका प्रभाव अधिगम में कमी के रूप में देखा जा सकता है। अधिगम की गति में कमी तथा बौद्धिक क्षमता में कमी भी केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र में परिवर्तन को परिलक्षित करता है। ह्रदय का वजन भी शारीरिक वनज में कमी के समानुपात में घटता है। सांवेदिक परिवर्तन भी वृद्धावस्था में दिखायी पड़ता है। दृष्टि तीक्ष्णता में कमी आती है। रंग के प्रति भी संवेदनशीलता में कमी आती है। कुछ वृद्ध इस समय तक चश्मा पहनने लगते है। ऊँची आवाज को सुनने में उन्हें कठिनाई होती है। वृद्धावस्था में महिलाओं की श्रवणशक्ति पुरूषों की तुलना में अच्छी होती है। स्वाद क्षमता में भी कमी आती है। घ्राणसंवेदना में कमी आती है । त्वचा सूखी होने के कारण तथा कठोर होने के कारण त्वचीय संवेदना जैसे-स्पर्श एवं दबाव में कमी आती है।
2. **गत्यात्मक परिवर्तन**-वृद्धावस्था में गत्यात्मक योग्यताओं में भी कमी आती है। इसका कारण शारीरिक कमजोरी एवं क्षीणता से है। नेत्र हस्त समन्वय में कमी हो जाती है । गत्यात्मक क्रियाओं में कमी का होना शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों कारण है। शारीरिक कारणों में शारीरिक शक्ति का ह्रास, ऊर्जा की कमी, माँसपेशियों की शक्ति में कमी, जोड़ो में कठोरता तथा अग्रबाहु, हाथों, मस्तिष्क एवं निम्न जबड़ों में थरथराहट या कपकपी होती है। मनोवैज्ञानिक कारणों में प्रमुख रूप से हीनताभाव का उत्पन्न होना है। जब वृद्ध लोग अपनी गत्यात्मक क्रियाओं की तुलना अपने से जवान लोगों से करते है तो उनमें प्रगति होने के कारण हीनता का भाव से ग्रस्त हो जाते है। ये सारे वर्णित मनोवैज्ञानिक कारक गत्यात्मक क्रियाओं में परिवर्तन में तेजी लाते है। या गत्यात्मक क्रियाओं में कमी करने का प्रयास करते है।
3. **मानसिक परिवर्तन**-वोल्ट्स और शाये ने यह बताया है कि इधर पिछले दशक में बौद्धिक स्तर का मनोविज्ञान एक रूढ़ियुक्ति से ग्रस्त है। मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के परिणामों के आधार पर यह बताया है कि यह विश्वास सही है कि अन्य क्षेत्रों में ह्रास के साथ-साथ वृद्धावस्था में मानसिक योग्यताओं में भी ह्रास होता है। इसके साथ ही साथ ही साथ यह भी

देखा जाता है कि वृद्धावस्था में अधिगम की क्षमता में भी कमी आती है। निगमनात्मक चिन्तन तथा अनुगमनात्मक चिन्तन में भी ह्रास आता है। सृजनात्मक चिन्तन में भी कमी देखी जाती है। वृद्ध लोगों में स्मृति की क्षमता में भी कमी पाई जाती है। प्रत्याहान प्रत्यावस्था की तुलना में इस आयु में ज्यादा प्रभावित होती हे।

4. **लैंगिक परिवर्तन-** इस अवस्था में लैंगिक शक्ति या सामर्थ्य में कमी देखी जाती हे। यह कमी प्रायः 60 वर्ष की आयु में परिलक्षित होने लगती है तथा आगे की आयु में वर्तमान रहती है। पुरूषों में इस अवस्था में शारीरिक क्षमता का ह्रास होने लगता है उसके दो प्रभाव दिखायी पड़ते है। पहला प्रभाव यह है कि गौण लैंगिक विशेषताओं में घटाव का होना। उदाहरणार्थ- पुरूषों की आवाज का भारीपन होना, शरीर तथा चेहरे पर प्रचुरता में कमी। वृद्ध महिलाएं भी कम स्त्रैण वाली दिखायी देती है। ये गुण मैनोपॉज के बाद दिखायी देते है। लिंग अन्तर्नोद की क्षमता वृद्धावस्था में पूरी तरह से शारीरिक स्वास्थ्य पर निर्भर करती है या साथ ही साथ पिछले अवस्थाओं में लैंगिक समायोजन पर भी निर्भर करती है। बटलर एवं लैविस 1975, क्लीवलैण्ड 1976 तथा पोक्स, गोडो, टोलोन तथा वाल्स 1977) अपने अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष दिया है कि जिन लोगों का लैंगिक समायोजन पिछली अवस्थाओं में अच्छा होता है उनका लैंगिक समायोजन उन लोगों की तुलना में जिनका पिछली अवस्थाओं में अच्छा नहीं होता है, उत्तम होता है।

5. **रूचियों में परिवर्तन-** शारीरिक मनोवैज्ञानिक एवं जीवनशैली में परिवर्तन की ही तरह वृद्धावस्था में रूचियों में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी होता है। रूचियों में परिवर्तन के लिए कई महत्वपूर्ण कारक अपनी भूमिका प्रदर्शित करते है जिसमें से प्रमुख वृद्धावस्था में स्वास्थ्य, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, आवास का स्थान, लिंग, वैवाहिक स्थिति तथा मूल्य है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि वृद्धावस्था में जिन लोगों का स्वास्थ्य अच्छा होता है वे उन रूचियों में अच्छा ध्यान देते है जिनमें ताकत एवं शक्ति की जरूरत पड़ती है। उच्च सामाजिक समूह वाले वृद्ध निम्न सामाजिक समूह की तुलना में सामाजिक क्रियाओं के प्रति रूचि रखते है। वृद्धावस्था में जिनके पास धनाभाव रहता है तो वे प्रायः पिछली अवस्थाओं द्वारा अर्जित रूचियों का परित्याग करते है तथा केवल उन रूचियों पर ध्यान देते है जिसके लिए उनके पास धन आवश्यक रूप में है। महिलाएँ समूह के रूप में पुरूषों की तुलना में अधिक रूचियाँ रखती है। मूल्यों में परिवर्तन के फलस्वरूप रूचियों में भी परिवर्तन होता है । वृद्धावस्था में प्रायः वैयक्ति रूचियां, सामाजिक रूचियां, मनोरंजन सम्बन्धी रूचियां, धार्मिक रूचियां तथा मृत्यु में खर्च आदि पायी जाती है, जो निम्न प्रकार से हैः-

a. **वैयक्तिक रूचियाँ**-वैयक्तिक रूचियों में मुख्य रूप से उनकी रूचियाँ स्वयं के प्रति, हावभाव की रूचियाँ, पोशाक में रूचियों तथा धन के प्रति पाई जाती है। वृद्धावस्था में प्रायः लोग आत्म केन्द्रित एवं अहम् केन्द्रित हो जाते है। वे अपने विषय में दूसरों की तुलना में ज्यादा सोचते है। वे दूसरों की इच्छाओं एवं रूचियों की परवाह नहीं करते है। यद्यपि उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है इसके बावजूद भी वे अपने स्वास्थ्य के प्रति तथा शारीरिक प्रक्रियाओं के प्रति काफी रूचि रखते है। अगर उनमें कोई बीमारी हो जाती है तो तुरन्त अपने पारिवारिक सदस्यों से इसकी शिकायत करते है। वे जब किसी से बात करते है तो बिना विराम के बात करते जाते है तथा बातों में ज्यादातर उनके भूतकाल की रूचियाँ तथा आशाएँ एवं प्रत्याशाएँ ज्यादा दिखायी देती है। आत्म केन्द्रित होने के कारण उनके प्रति प्रतिकूल सामाजिक अभिवृत्तियाँ जन्म ले लेती है। युवा लोग जो यह समझते है। कि वृद्ध लोग आत्मकेन्द्रित न होकर समाज केन्द्रित तथा स्वार्थी न होकर निःस्वार्थी होना देखना चाहते है। वे इस बात को लेकर काफी परेशान रहते है कि जो सहयोग इनसे मिलना चाहिए वह न मिलकर बल्कि उनका व्यवहार सामाजिक व्यवहार न होकर आत्म केन्द्रित व्यवहार हो जाता है। इस प्रकार की प्रतिकूल सामाजिक अभिवृत्तियाँ युवा लोगों में जन्म लेने लगती है। वृद्ध पुरूष वृद्ध महिलाओं की तुलना में अपने हावभाव के प्रति ज्यादा रूचि रखते है। वृद्धावस्था में कपड़े पहनने का खर्च भी तीव्र दिखायी देता है। कपड़े के प्रति रूचि भी उनकी क्रियाशीलता तथा आर्थिक स्तर पर निर्भर करती है। इस अवस्था में यदि आर्थिक स्तर उच्च है तो ज्यादातर वृद्ध फैशन के हिसाब से कपड़ा पहनना पसन्द करते है। वे समझते है। कि वेशभूषा भी उम्र को कम करती है। यानि उम्र उसमें छिप जाती है।

b. **मनोरंजन सम्बन्धी रूचियाँ**-इस अवस्था में भी उन सभी मनोरंजन के साधनों को व्यवस्थित रखना चाहती है जो पिछली अवस्थाओं में मनोरंजन प्रदान करते रहे है। इस मनोरंजन के साधनों में जब आवश्यकता होती है तो परिवर्तन भी किया जाता है । सही अर्थो में यदि देखा जाये तो वृद्धावस्था में रूचियों में परिवर्तन कम होता है बल्कि मनोरंजन सम्बन्धी रूचियाँ संकुचित हो जाती है। इस अवस्था की सामान्य मनोरंजन सम्बन्धी क्रियाएँ निम्नलिखित होती है जैसे- पढ़ाई करना, पत्र लिखना, रेडियो सुनना, टेलीफोन करना, टी.वी. देखना, मित्रों के यहाँ भ्रमण करना, सम्बन्धियों के यहाँ जाना।

c. **सामाजिक रूचियाँ**-वृद्धावस्था में आयु में वृद्धि होने के साथ-साथ ज्यादातर लोग सामाजिक कार्यान्मूलन (Social dischargement)से ग्रस्त होते है जिसका तात्पर्य सामाजिक वातावरण से पलायन की प्रक्रिया का शुरू होना है। इस सम्बन्ध में विरेन 1964 ने सामाजिक पलायन या सामाजिक कार्यामुक्ति की व्याख्या करते हुए यह बतलाया है कि उसमें 4 तत्व प्रमुख रूप से तत्पर होते है जिसमें प्रथम तत्व है दूसरे लोगों से कम लगाव, दूसरा तत्व सामाजिक भूमिकाओं के

निर्वहन में कमी का आना, तीसरा तत्व मानसिक योग्यता का अधिक प्रयोग तथा चौथा तत्व शारीरिक क्रियाओं में अल्प क्रियाशीलता का होना। सामाजिक कार्यान्मुक्ति वृद्धावस्था की समान समस्या है। इस अवस्था में सामाजिक सम्पर्क तथा सामाजिक सहभागिता में कमी आती है। सामाजिक कार्योन्मुक्ति स्वैच्छिक तथा अनैच्छिक दोनों हो सकती है। स्वेच्छिक सामाजिक कार्योन्मुक्ति की दशा में वृद्ध लोग अपने को सामाजिक क्रियाओं से स्वेच्छा से अलग करते है क्योंकि इस अवस्था में उनकी रूचियाँ अपने तक ही सीमित रहती है। वे दूसरों के प्रति तथा सामाजिक कार्यों के प्रति ध्यान कम देते है। उनका क्षेत्र केवल स्वयं एवं उनका परिवार ही हो जाता है। वे आत्मकेन्द्रित एवं अहम् केन्द्रित हो जाते है। इस कारण से भी सामाजिक कार्यों से पलायन प्रदर्शित होता है।

d. **धार्मिक रूचिया**-प्रायः ऐसी धारणा है कि जब वृद्ध लोग मृत्यु के करीब अपने को समझते है तो उनकी धर्मिक रूचियों में बढ़ोत्तरी होती है। धार्मिक रूचियों तथा धार्मिक क्रियाओं पर जो शोध किये गये उनसे यह पता चलता है कि आयु में वृद्धि होने के साथ-साथ व्यक्ति धार्मिक होता जाता है। परन्तु कुछ शोध इस बात की स्वीकृति नहीं प्रदान करते है तथा उनका विश्लेषण यह है कि उम्र में वृद्धि के साथ-साथ धार्मिक रूचियों में कमी आती है। यद्यपि वृद्धावस्था में धार्मिक रूचियों के प्रति कमी आने के बावजूद वृद्ध लोगों में धार्मिक विश्वास की भावना वैसे ही बनी रहती है जैसी उनकी पिछली अवस्थाओं में पायी जाती रही है

e. **मृत्यु में रूचि**-वृद्धावस्था में वृद्ध लोग अपने मृत्यु के प्रति काफी चिन्तित रहते है तथा उनके मन में अपने मृत्यु के प्रति काफी सवाल उठते है। वे अपने मृत्यु एवं मृत्यु के बाद के जीवन के प्रति काफी चिन्तित रहते है। जैसा कि विश्वास है कि स्वर्ग एवं नरक दो प्रकार के स्थल है। जहाँ पर मृत्यु के बाद व्यक्ति को स्थान मिलता है उसके प्रति भी काफी परेशान रहते है। कि पता नहीं मुझे क्या मिलेगा। प्रथम प्रश्न जो वृद्ध लोगों के मन मे उठता है वह है कि 'मेरी मृत्यु कब होगी ? वे इससे बहुत परेशान रहते है। कि मेरी मृत्यु के विषय में क्या डॉक्टर एवं जीवन बीमा वाले कार्यकर्त्ता भविष्यवाणी नहीं कर सकते है।? वे ऐसा अनुमान लगाते है। कि इस पारिवारिक स्थिति, स्वास्थ्य की दशा के आधार पर हम कितने दिन तक और जीवित रह सकते है। कुछ लोग ऐसे भी होते है जिनमें मृत्यु की चिन्ता नहीं रहती हे परन्तु वे इस बात से ज्यादा परेशान रहते है कि अभी कौन सा काम मेरे जीवन का करने के लिए शेष रह गया है क्या मैं इसे वृद्धावस्था में कर पाऊँगा कि नहीं? ऐसे लोग डॉक्टर से यह जानना चाहते है कि यदि मेरे मृत्यु का पता चल जाये तो मैं इस अधूरे कार्य को पूरा कर सकूँ। दूसरा प्रश्न जो उनके मन में उठता है वह है कि "मेरे

मृत्यु का क्या कारण होगा?" जबकि सांख्यिकी यह प्रदर्शित करती है कि मृत्यु का कारण प्रायः केन्सर, हृदयरोग, मस्तिष्क आधातय पक्षाघात तथा दुर्घटना ही होती है परन्तु कुछ अन्य कारण भी इसके लिए जिम्मेदार होते है। इस प्रश्न की रूचि में कि मृत्यु का क्या कारण होगा लोग उससे चार प्रमुख क्षेत्र में अपना ध्यान केन्द्रित करते है। पहला क्षेत्र होता है कि वे यह सोचते है कि यदि मुझे मृत्यु का कारण मालूम हो जाये तो उससे कैसे छुटकारा मिल सकता है उसके विषय में रूचि रखते है। उदाहरणार्थ यदि उन्हें मालूम हो जाये कि उनके मृत्यु का कारण मस्तिष्क आधात या पक्षाघात हो सकता है तो वे इससे मुक्ति के लिए वे संस्तुत भोजन की खुराक, कसरत तथा भार में कमी लाने के प्रयास करेंगे जैसा कि डॉक्टरों ने सलाह दी है।

4.6 **वृद्धावस्था में समस्याएँ** (Hazards During Old age)

1. **शारीरिक समस्याएँ** -वृद्धावस्था में शारीरिक समस्याएँ ज्यादा दिखती है। सामान्य रूप से जो शारीरिक समस्याएँ प्रायः सभी वृद्धों में पायी जाती है, वे होती है- रोग एवं शारीरिक विकलांगता की समस्या, कुपोषण की समस्या, दन्तविकृति की समस्या, लैंगिक वंचन की समस्या तथा दुर्घटनाओं की समस्या इत्यादि।
2. **मनोवैज्ञानिक समस्याएँ** -वृद्धावस्था में बहुत सारी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ भी होती है।। ऐसा नहीं है कि ये मनोवैज्ञानिक समस्याएँ केवल वृद्धावस्था में होती है। बल्कि ये समस्याएँ अन्य अवस्थाओं में भी पाई जाती है।।

- **वृद्धों की सांस्कृतिक रूढ़ियुक्तियों की स्वीकृति**-प्रथम गम्भीर मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में सांस्कृतिक तथा पारस्परिक रूढ़ियुक्तियों को स्वीकृति प्रदान करने से होता है। यह समस्या इसलिए होती हे कि ये पारस्परिक विश्वास एवं रूढ़ियुक्ति वृद्धों में ऐसी भावना उद्दीप्त करती है कि वृद्ध लोग हीनता से ग्रस्त तथा अनुपयुक्तता से भी ग्रस्त होते है।
- **उम्र बढ़ने के साथ-साथ शारीरिक परिवर्तन का प्रभाव**-दूसरी मनोवैज्ञानिक समस्या वृद्धावस्था में शारीरिक परिवर्तन के कारण दिखायी देती है जिसमें प्रायः उनके अंदर एक ऐसी भावना का जन्म होता है जहाँ वे स्वयं को अनपयुक्त एवं असमर्थ समझते है
- **मानसिक रूप से भूलने की प्रवृति**-तीसरी मनोवैज्ञानिक समस्या उनके भूलने की प्रवृत्ति से सम्बन्धित होती है । वे प्रायः इस आशंका से ग्रस्त रहते है कि अब वे वृद्ध हो रहे है। अतः उनकी मानसिक क्षमता में भी ह्रास होगा।
- **जीवन शैली में परिवर्तन**-इस अवस्था में उन्हें अपनी जीवन शैली में भी परिवर्तन करना पड़ता है। प्रायः सेवानिवृति के बाद उन्हें अपने बच्चों के साथ रहना पड़ता है जिसके कारण उन्हें अपने

पुरानी जीवन शैली को त्यागकर अपनी उपयुक्त जीवन शैली ही अपनानी पड़ती है ऐसा करने में भी उन्हें काफी मानसिक परेशानी होती है।

- **सुस्ती से अपराध की भावना-**मनोवैज्ञानिक समस्या सुस्ती के कारण अपराध की भावना के जन्म से सम्बन्धित होती है। वे अपने शारीरिक अक्षमता के कारण यह सोचते है कि और लोग अभी क्रियाशील है परन्तु मैं निष्क्रिय हो गया हूँ। सेवानिवृत्ति के बाद ऐसी भावनाएँ प्रायः जन्म ले लेती है क्योंकि उनके पास अब कोई काम करने को नहीं रह जाता है। वे कुछ करना चाहते है परन्तु शर्म के कारण कुछ करने को तत्पर नहीं होते है। क्योंकि वे समझते है कि अब समाज ने मुझे निष्क्रिय मान लिया है।
- **आय में कमी-**छठीं मनोवैज्ञानिक समस्या आय में कमी के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। सेवानिवृति के बाद ज्यादातर वृद्ध लोग अपने खाली समय का सदुपयोग आय में कमी के कारण नहीं कर पाते है।
- **सामाजिक विलगन-**यह सातवीं समस्या सबसे गम्भीर मनोवैज्ञानिक समस्या होती है। यह सामाजिक विलगन की समस्या ऐच्छिक एवं अनैच्छिक दोनों कारणो से होती है। लेकिन प्रायः अनैच्छिक होती है, जैसे- शारीरिक स्वास्थ्य के कारण, आय में कमी के कारण तथा अन्य कारणों से भी जिस पर वृद्ध लोगों का नियन्त्रण नहीं होता है उसके कारण सामाजिक विलगन की समस्या जन्म ले लेती है। इन सभी कारणों से वृद्ध लोग अपने को सामाजिक क्रियाओं तथा क्रिया कलापों से अलग कर लेते है।

4.7 मध्यावस्था की विशेषताएँ

- **मध्यावस्था आशंका की अवधि के रूप में-** इस अवस्था में आशंकाएँ जन्म देती है। इस अवस्था में प्रथम आशंका यह होती है कि प्रौढ़ लोग समझने लगते है कि अब हम वृद्धावस्था के करीब है। यह अवस्था भय एवं आशंकाओं की अवधि कही जाती है। उनकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता में कमी आती है इससे वे आशंकित रहते है कि अब बुढ़ापा आने वाला है। इस तरह यह अवस्था आशंका को जन्म देती है।
- **मध्यावस्था संक्रमणकाल की अवधि के रूप में-** इस अवस्था को संक्रमणकाल की अवधि भी कहते है। जैसे युवावस्था को बाल्यावस्था और किशोरावस्था का संक्रमणकाल माना जाता है उसी प्रकार से यह भी प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था का संक्रमणकाल होता है। इस अवस्था में प्रौढ़ों को अपनी शारीरिक और व्यावहारिक विशेषताओं को पीछे छोड़कर जीवन में प्रवेश करना पड़ता है।

- **मध्यावस्था प्रतिबल की अवधि के रूप में-**मध्यावस्था की तीसरी विशेषता यह है कि उसे प्रतिबल की अवधि के रूप में माना जाता है। इस अवस्था में शारीरिक परिवर्तन तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन सबसे ज्यादा होते है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप सबसे ज्यादा समायोजन भी इसी अवस्था में करना पड़ता है। मारमर ने इस अवस्था में उत्पन्न होने वाले प्रतिबलों को चार भागों में रखा है जो क्रमशः शारीरिक प्रतिबल, सांस्कृतिक प्रतिबल, आर्थिक प्रतिबल और अंतिम मनोवैज्ञानिक प्रतिबल के रूप में होता है। इसका कारण दम्पत्ति में से किसी एक की मृत्यु से या बच्चों को घर से बाहर पढ़ने के लिए भेजने पर तथा शादी से नीरसता प्रकट होने पर तथा जवानी खोने और मृत्यु को छूने के कारण होता है। ये सभी कारण प्रतिबल को जन्म देते है जिससे उनका जीवन तनाव से भर जाता है।
- **मध्यावस्था एक खतरनाक आयु के रूप में-** इस अवस्था की चौथी विशेषता खतरनाक आयु के रूप में जानी जाती है। मध्यावस्था को खतरनाक आयु इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि इस अवस्था में वे शारीरिक रूप से टूट जाते है, दुखी रहते है तथा ज्यादा कार्य करने से एवं असावधानीपूर्वक रहन-सहन से भी परेशान रहते है। मानसिक बीमारियाँ भी इस अवस्था में चरम सीमा पर होती है। शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन उनके स्वास्थ्य को ही नहीं प्रभावित करते है बल्कि उनके दाम्पत्य जीवन को भी दुःखमय बना देते है।
- **मध्यावस्था अनुपयुक्त या भद्दी अवस्था के रूप में -**मध्यावस्था की पाँचवी विशेषता इसके अनुपयुक्त अवस्था के रूप में जानी जाती है जिस प्रकार से किशोर न बच्चे रह जाते है, न प्रौढ़ हो पाते है उसी प्रकार से मध्य आयु के पुरूष तथा महिलाएँ अपने को न तो प्रौढ़ ही कह पाते है, न तो वृद्ध ही ।
- **मध्यावस्था एक उपलब्धि की अवधि के रूप में-**इस अवस्था की छठवीं विशेषता उपलब्धि की अवधि के रूप में जानी जाती है। Erickson(1968) के अनुसार मध्यावस्था में या तो प्रौढ़ अधिक सफल बनना चाहता है या तो जो है उसी पर स्थिर रहना चाहता है। यदि मध्यावस्थामें कुछ कर सकने की इच्छा जागृत होती हे तो वे अपनी चरम सीमा पर पहुँचते है।। महिलाओं में ऐसा देखा जाता है कि वे इस अवस्था में ही सफलता की ऊँची सीढ़ी पर पहुँचती है।
- **मध्यावस्था मूल्यांकन की अवधि के रूप में-**इस अवस्था में यह भी विशेषता होती है कि उसमें मध्य आयु के लोग स्वमूल्यांकन भी करते है। जैसा कि हमें मालूम है कि इस अवस्था में मध्य आयु के पुरूष तथा महिलाएँ अपनी उपलब्धियों के चरम सीमा पर होते है। इसलिए उनके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह समाज की अपेक्षाओं, परिवार की प्रत्याशाओं तथा

मित्रों की इच्छाओं के अनुरूप क्या-क्या पिछली अवस्थाओं में कर चुके है। उसका स्वयंमूल्यांकन करें।

- **मध्यावस्था का मूल्यांकन दोहरे मानक के रूप में होता है-** मध्यावस्था की आठवीं विशेषता मध्यावस्था को दोहरे मानक के रूप में मूल्यांकन करने से है। उसमें पुरूष तथा महिलाओं का मूल्यांकन अलग-अलग ढंग से किया जाता है। यह दोहरा मानक मूल्यांकन मध्यावस्था के पुरूष तथा महिलाओं के जीवन को प्रभावित करते है। पहला मूल्यांकन उनके शारीरिक परिवर्तन से किया जाता है। दूसरा मूल्यांकन उनके समायोजन को लेकर किया जाता है।
- **मध्यावस्था एक रिक्त घोसले की अवधि के रूप में-**यह मध्यावस्था की 9वीं विशेषता है। इस अवस्था में बच्चे माता-पिता की छाँव में नहीं रहना चाहते है। यह समस्या उन परिवारों में ज्यादा आती है जहाँ पर शादियाँ पहले की अवस्थाओं में हो जाती है। परन्तु जहाँ पर विवाह विलम्ब से होते है तथा परिवार का आकार बड़ा होता है तथा बच्चा का जनन होना बन्द कर दिया गया है वहाँ पर ऐसी समस्याएँ कम होती है। इस अवस्था को वैवाहिक जीवन का रिक्त घोंसला वाली आयु कहा जाता है। इस अवस्था में जब बच्चे बड़े हो जाते है तो अपने व्यवसाय में लग जाते है तथा घर से दूर रहते है, ऐसे समय में मध्यावस्था के प्रौढ़ अपने को अकेला महसूस करते है।
- **मध्यावस्था नीरसता की अविध के रूप में-**यह अन्तिम विशेषता है। इस अवस्था में मध्यआयु के स्त्री तथा पुरूष नीरसता या बोरियत की भावना से त्रस्त रहते है। 30-40 वर्ष के मध्य में नीरसता की मात्रा तीव्र रहती है। पुरूष प्रायः अपनी दिनचर्या के प्रति तथा पारिवारिक जीवन के प्रति काफी नीरसता महसूस करते है। किसी भी आयु में बोरियत प्रसन्नता नहीं प्रदान करती है। परिणामस्वरूप मध्यावस्था प्रायः जीवन की सबसे अप्रसन्नता वाली अवस्था कही जाती है। मेल्टजर एवं लुडविंग 1967ने एक अध्ययन में सुखद एवं दुखदस्मृतियों का अनुभव एक समयान्तराल पर करके प्राप्त किया है कि विशेषकर 40-49 वर्ष की अवधि सबसे कम प्रसन्नता वाली होती है। केवल 60 वर्ष की अवधि के बाद का समय अप्रसन्नता का होता है। इस तरह से यदि कहा जाय कि मध्यावस्था बोरियत की अवधि होती है तो अतिश्योक्ति न होगी।

4.8 वृद्धावस्था की विशेषताएँ

- **वृद्धावस्था ह्रास को अवधि के रूप में-**इस अवस्था में लोगों में स्थिरता के स्थान पर परिवर्तन नजर आता है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मानसिक क्षमता में ह्रास परिलक्षित होने

लगता है। लोग 60 वर्ष की आयु तक वृद्ध नजर आने लगते है। इस अवस्था में पूरे शरीर में कमजोरी महसूस होने लगती है। असहाय की भावना जन्म ले लेती है। प्रेरणा में भी ह्रास दिखायी देने लगता है।

- **वृद्ध होने के प्रभाव में वैयक्तिक विभिन्नता पायी जाती है-** Ageing के प्रभाव पर वैयक्तिक भिन्नता देखी गयी है। ऐसा मानना है कि पुरूषों तथा महिलाओं में Ageing की गति अलग-अलग होती है। यह अन्तर आयु के साथ-साथ बढ़ता रहता है। कुछ लोग सेवानिवृत्ति को आशीर्वाद के रूप में स्वीकार करते है। तथा कुछ लोग इसे अभिशाप मानते है।
- **वृद्धावस्था का मूल्यांकन विभिन्न मापदण्डों पर होता है-**इस अवस्था का मतलब बड़ा दुरूह एवं कठिन है तथा बच्चों के लिए अपरिभाषित है। बच्चे उसको शारीरिक हावभाव के रूप में मूल्यांकित करते है। उनके लिए बच्चे प्रौढ़ से छोटे होते है। इसलिए प्रौढ़ को बच्चों की देखभाल करनी चाहिए। प्रौढ़ बड़े होते है। वे अपनी देख-रेख स्वयं कर लेते है। बच्चों के परिपेक्ष्य में वृद्ध लोगों के सफेद बाल होते है तथा वे प्रतिदिन काम पर नहीं जाते है। समय आते ही यही बच्चे किशोर हो जाते है। वे वृद्ध लोगो का मूल्यांकन वैसे ही करने लगते है। जैसे प्रौढ़ लोग करने लगते है। कुछ वृद्ध ऐसे भी होते है। जो वह सब कर सकते है जो एक प्रौढ़ या किशोर कर सकता है। वे सुन्दर कपड़े पहनकर आकर्षक भी लगते है तथा अपनी क्षमता शक्ति का अच्छा प्रदर्शन भी करते है। इस बात का वे प्रयास करते है कि लोग उन्हें वृद्ध कहकर भ्रमित न हो बल्कि अभी वे वृद्ध नहीं हुए है। इस बात का एहसास दिलाते है।
- **वृद्ध के प्रति बहुत सीरूढ़िक्तियाँ भी होती है-**वृद्ध लोगों के प्रति कई प्रकार के विश्वास एवं रूढ़ियुक्तियाँ पाई जाती है।उनकी शारीरिक एवं मानसिक योग्यता के प्रति कई परम्परागत विश्वास होते है। हँसी मजाक तथा विभिन्न प्रकार के हँसी के साधन भी वृद्ध लोगों के प्रति रूढ़ियुक्तियाँ बनाने में मदद करते है। प्रायः वृद्धों के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियाँ बना ली जाती है। इस अवस्था को प्रायः मूर्खता की अवस्था के रूप में मानकर उनका मूल्यांकन किया जाता है। अन्तिम रूढ़ियुक्तियाँ प्रायः इस तरह होती है। वृद्ध कमजोर, असहाय तथा अक्षम होते है।
- **वृद्धावस्था के प्रति सामाजिक अभिवृत्तियाँ भी होती है-**रूढ़ियुक्तियों का वृद्ध तथा वृद्धावस्था के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्तियाँ विकसित करने में महत्वपूर्ण स्थान होता है। विशेषतया यह देखा गया है कि वृद्धावस्था के प्रति लोगों की अभिवृत्ति नकारात्मक तथा प्रतिबल ही देखी जाती है।
- **वृद्ध लोगों की संस्थिति अल्पसंख्यक समूह जैसी होती है-**समाज में इनकी स्थिति अल्पसंख्यकों के रूप में होती है। उन्हें द्वितीय श्रेणी का नागरिक माना जाता है। उन्हें कमजोर

एवं असहाय समझने के साथ-साथ वे उनके साथ अच्छा व्यवहार भी नहीं करते है, वे समझते है कि ये मेरा नुकसान ही क्या कर सकते है। उनका कोई अपना सशक्त समूह नहीं होता है जो अपने खिलाफ हो रहे व्यवहार के प्रति आवाज उठा सकें परन्तु यह स्थिति संस्कृति से तथा राष्ट्र से राष्ट्र तक अलग-अलग होती है।

- **वृद्धावस्था में भी भूमिका परिवर्तन होता है-**जिस प्रकार से मध्यावस्था के लोग नयी भूमिकाओं का अर्जन करते है उसी प्रकार से वृद्ध लोगों को भी करना चाहिए। परन्तु शारीरिक रूप से असमर्थ एवं कजोर होने के कारण उनकी सामाजिक क्रियाकलापों के प्रति रूचियाँ कम होती जाती है। इस प्रकार से उनकी पहले की अर्जित भूमिकाओं में भी कमी आती है।
- **वृद्धावस्था में समायोजन ठीक नहीं होता है-** प्रतिकूल सामाजिक अभिवृत्ति विकसित हो जाने के कारण समाज का व्यवहार उनके प्रति अनुकूल नहीं होता हे जिसके फलस्वरूप वृद्ध लोग प्रतिकूल आत्म सम्प्रत्यय विकसित कर लेते है। जिसके कारण उनका व्यवहार समायोजित ढंग से नहीं हो पाता है।
- **वृद्धावस्था में समायोजन ठीक नहीं होता है-**प्रतिकूल सामाजिक अभिवृत्ति विकसित हो जाने के कारण समाज का व्यवहार उनके प्रति अनुकूल नहीं होता है जिसके फलस्वरूप वृद्ध लोग प्रतिकूल आत्म सम्प्रत्यय विकसित कर लेते है जिसके कारण उनका व्यवहार समायोजित ढंग से नहीं हो पाता है।
- **वृद्धावस्था मे फिर से शक्ति प्राप्त करने की भी इच्छा होती है-**अल्पसंख्यक समूह की स्थिति को देखते हुए अधिकतर वृद्ध इस अवस्था में फिर से जवान बनना चाहते है। जब वे देखते है कि अब वृद्धावस्था नजदीक है तो उसके लिए वे परेशान हो जाते है तथा जिस प्रकार से उसे रोका जा सकता है उसकी कोशिश करते है। इस सम्बन्ध में लोग दवा आदि का प्रयोग भी करते है।

4.9 सारांश

अन्य अवस्थाओं की तरह मध्यावस्था व वृद्धावस्था की भी अपना महत्व है। इन अवस्थाओं की भी अपनी समस्यायें , विशेषतायें है। पूरे जीवन विस्तार में यह सबसे समस्यात्मक अवस्था मानी जाती है। इसमें स्वास्थ्य का भी काफी महत्व होता है। इस अवस्था में शारीरिक क्षमता में परिवर्तन दिखायी पड़ता है। मध्यावस्था में मोटापा पेट के पास बढ़ जाताहै। सिर के बाल हल्के दिखाई देने लगते है।। शरीर की चमड़ी में भी काफी परिवर्तन दिखायी पड़ता है। वृद्धावस्था में आँखों में चमक नहीं रह जाती है। त्वचा में भी झुर्रियाँ दिखायी देती है। त्वचा पतली हो जाती है।

मध्यावस्था में लैंगिक परिवर्तन , मानसिक परिवर्तन, रूचियों में परितवर्तन व सामाजिक परिवर्तन परिलक्षित होते है। वृद्धावस्था में गत्यात्मक योग्यताओं में भी कमी आ जाती है। इसका कारण शारीरिक कमजोरी एवं क्षीणता से है। मनोवैज्ञानिक कारणों में प्रमुख रूप से हीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है। मानसिक परिवर्तन में वृद्धावस्था में देखे जाते है। लैगिक परिवर्तन व विभिन्न प्रकार की रूचियों मं परिवर्तन जैसे व्यैक्तिक रूचियों में परिवर्तन, मनोरंजन सम्बन्धी रूचियां, सामाजिक रूचियां, धार्मिक रूचियां व मृत्यु में रूचि आदि में परिवर्तन दिखाई देता है।

मध्यावस्था में विभिन्न विशेषताये है। जैसे-आशंका की अवधि, संक्रमणकाल की अवधि, प्रतिबल की अवधि खतरनाक आयु के रूप में अनुपयुक्त व भद्दी अवस्था के रूप में,एक उपलब्धि की अवधि के रूप में मूल्यांकन की अवधि के रूप में वृद्धावस्थाकी भी विभिन्न विशेषतायें होती है जैसे ह्रास की अवधि, वैयक्तिक भिन्नता पायी जाती है । वृद्धावस्था का मूल्यांकन विभिन्न मापदण्डों पर, वृद्ध के प्रति बहुत सी रूढ़ियुक्तिया, भूमि का परिवर्तन के रूप विभिन्न प्रकार की विषेषताए देखने को मिलती है।

4.10 मूल्यांकन प्रश्न

1-मध्यावस्था में होने वाले शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व सामाजिक परिवर्तनों को विस्तार से समझाइये।

2-वृद्धावस्था में होने वाले परिवर्तन मध्यावस्था में होने वाले परिवर्तनों से कैसे भिन्न है।।

3-मध्यावस्था व वृद्धावस्था की विशेषताओं को संक्षेप में समझाइये।

4.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. डा0 प्रेमचन्द्र मिश्र '' आज का विकासात्मक मनोविज्ञान‘‘ साहित्य प्रकाशन आगरा 2009 ।
2. भाई योगेन्द्रजीत ''विकासात्मक मनोविज्ञान‘‘ विनोदपुस्तक मन्दिर आगरा 1993।
3. डा0 जे.एन. लाल अनिता श्रीवास्तव आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर-आगरा-2 2001
4. Elizabeth B. Hurlock- Developmental Psychology A life Span Approach Tata Mc Graw- Hill Publishing Company Ltdf. New Delhi 1997.

इकाई 5. मध्यावस्था (व्यावसायिक) और वृद्धावस्था (सेवानिवृत्ति और पारिवारिक) के दौरान समायोजन (Adjustment during Middle age (Occupational) and Old age (to Retirement and Family life)

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन

5.4 मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक

5.5 सेवानिवृत्त अवस्था के प्रति समायोजन

5.6 वृद्धावस्था में पारिवारिक जीवन में परिवर्तन

5.7 सारांश

5.8 स्वमूल्याकंन हेतु प्रश्न

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 प्रस्तावना

परम्परागत रूप से मध्यावस्था की उम्र 40-60 वर्ष मानी गई है। इस आयु वर्ग में स्त्रियों व पुरूषों में काफी शरीरिक व मानसिक परिवर्तन होते हैं शरीरिक क्षमता में जहाँ क्षीणता आ जाती है वहीं जीवन के विभिन्न अनुभवों के रूप में व्यक्ति स्वयं को परिपक्व मानने लगता है इस अवस्था में अपने व्यावसायिक समायेजन के साथ व्यक्ति को परिवारिक दायित्व जैसे बच्चों को रोजगार में स्थापित करना उनकी शादी ब्याह करना, आर्थिक रूप से जिम्मेदारियों को पूर्ण करने की कोशिश करना आदि कारण व्यक्ति में विभिन्न मानसिक परिवर्तन करते हैं, समाज एवं संस्कृति व्यक्तियों से एक जिम्मेदार नागरिक की अपेक्षा करता है जिस कारण उसे व्यक्तिगत, सामाजिक व्यवसायिक,परिवारिक जीवन आदि में विभिन्न क्षेत्रों में बेहत्तर समायोजन का दबाब भी बना रहता है।

प्रस्तुत अध्याय में मध्यावस्था सेवानिवृत्त अवस्था व वृद्धावस्था में आने वली समायोजन सम्बन्धी समस्याओं पर बातों पर चर्चा की गई है।

5.2 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान जायेंगे

- मध्यवस्था में व्यवसायिक समायोजन एवं उसे प्रभावित करने वाले कारक
- सेवानिवृत्ति अवस्था के प्रति समायोजन
- वृद्धावस्था में पारिवारिक जीवन में होने वाले परिर्वन

5.3 मध्यावस्था में व्यवासायिक समायोजन (Vocational Adjustment in middle age)

मध्यावस्था में विभिन्न प्रकार के समायेजन की समस्यायें उत्पन्न होती है जिस कारण पिछले व्यवहार प्रतिमानों या अभिवृत्तियों में काफी परिवर्तन करना आवश्यकीय हो जाता है यदि व्यक्ति अपने प्रौढावस्था में उन समस्याओं का सामना बेहत्तर ढ़ग से कर चुका है पुनः इस आयु वर्ग में वह इन समायोजन की समस्याओं से बच नहीं पाता जैसे- यदि काई महिला प्रौढ़ावस्था में एक माँ व पत्नी की भूमिका बेहत्तर ढ़ग से निभाती है या बेहत्तर ढ़ग से समायोजन करती है परन्तु मध्यआयु में बच्चो का विवाह होने से या अलग घर बसा लेने से उसकी भूमिका बदल जाती है तथा कई बार रूचियों में भी परिवर्तन होते देखा गया है कई बार भूमिका बदलने, रूचियाँ बदलने व व्यवसाय में परिवर्तन होने से व्यक्ति में तनाव व विभिन्न संवेगात्मक परिवर्तन भी होते देखे गये है जो उसके समायोजन को प्रभावित करते हैं।

इसी प्रकार कोई भी व्यवसायिक स्त्री एवं पुरूष मध्यावस्था में सफलता के उत्कर्ष के बाद भी खराब स्वास्थ्य, प्रबंधका में किसी प्रकार का परिवर्तन, अपने से कम आयु वर्ग के लोगो से प्रतियोगिता आदि अनेक कारणों से विभिन्न समायोजन की समस्याओं से जूझ रहे होते हैं। मध्य आयु में व्यक्ति को व्यवसायिक सन्तोष मिला है या नहीं, उपलब्धि क्या रही आदि बातों की चर्चा व्यवसायिक समायोजन को प्रभावित करने वाले कारको में की गई है।

5.4 मध्यावस्था में व्यावसायिक समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक (condition influencing vocational adjustment in middle age)

मध्यावस्था में समायोजन को विभिन्न कारक प्रभावित करते है जो निम्न हैं

1. **कार्य में संतुष्टि (Satisfaction with work)** मध्यवस्था के जीवनकाल में लाक्षणिक रूप में दिखाई देने वाली व्यापक बेचैनी बच्चों के भरण पोषण के कार्य भार से मुक्त हो जाना, कई बार पारिवारिक दायित्व के कारण प्रौढ़ावस्था से ही ना पसंद कार्य को करना व मध्यावस्था में उसे छोड़ने के लिए उतावला रहना अथवा स्वंय द्वारा किये जाने वाले कार्य से सन्तुष्टन रहना आदि कारक। व्यक्ति के समायोजन में असन्तोष उत्पन्न करते हैं।

2. **पदोन्नति के अवसर** (**Opportunities for Promoting**) वर्तमान समय में बहुत से कम्पनियों में कर्मचारियों को प्रमोशन के अवसर देने के बजाय दबाब से उन्हें आवश्यक सेवानिवृत्त कर देते है ताकि वो युवा कर्मचारियों से अधिक काम ले सके ये परिस्थितियाँ मध्य आयु के लोगो में आर्थिक असुरक्षा के साथ तनाव भी उत्पन्न करती है क्योंकि जब व्यक्ति यह अपेक्षा करता है कि वह पदोन्नति के शीर्ष पर होगा उस समय उसे आवश्यक अवकाश दे देना उसके लिए एक मनोघात जैसा होता है जो उसके समायोजन को प्रभावित करती है।

3. **पति-पत्नी की एक दूसरे के प्रति अभिवृत्ति (Altitude of spouse)** यदि पत्नी अपने पति के कार्य स्तर उसके व्यवसाय व वेतन से सन्तुश्ट नहीं होती हैं तो वह उसका प्रभाव उसके बच्चों व जीवन पर पड़ता हैं क्योकि पारिवारिक परिवेष सुखमय नहीं होता हैं और वह अकेलापन महसस् करती हैं इसके विपरीत यदि पति पत्नी के कार्यो से सन्तुश्ट नहीं होता हैं तो वह आफिस में भी अधिकांशतःशिकायत का असन्तोश जाहिर करता है जो व्यवसायिक समायोजन पर प्रभाव डालती है।

यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि वर्तमान समय में अधिकांष महिलायें सारे व्यवसायिक संस्थानों में कार्य करती है अतः पति-पत्नी दोनों की एक दूसरे के प्रति नकरात्मक अभिवृत्ति दोनो के व्यवसायिक समायोजन को प्रभावित करती है।

4. **व्यवसायिक अपेक्षाओं का प्रभाव (The impact of Vocational Expectation)** व्यवसायिक अपेक्षाओं का भी प्रभाव समायोजन पर स्पष्ट दिखाई देता है व्यक्ति अपने व्यवसायिक जीवन में जो अपेक्षायें/आकांक्षायें करते है अगर सेवनिवृत्त तक वह आंकाक्षायें पूरी हो जाती है तो उन पर सकारात्मक प्रभाव डालती है परन्तु आकांक्षा के पूरी न होने पर व्यक्ति में नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होने लगता है जो समायोजन को बाधित करता है।

5. **प्रतिकूल सामाजिक अभिवृत्ति (Unfavorable Social Attitude)** मध्यावस्था के संदर्भ में सामाजिक रवैया अच्छा नहीं होता ऐसा माना जाता है कि वो अपने को नई प्रणालियों के अनुकूल नही बना पाते क्योंकि इस अवस्था मानसिक कठिनता उत्पन्न होने लगती है व्यक्ति युवा वर्ग के साथ कदम से कदम मिला कर नहीं चल पाता इस प्रतिकूल सामाजिक धारणा के कारण कई बार मंदी के दौर में मध्यावस्था के लोगों को जबरदस्ती सेवानिवृत्त कर दिया जाता है जो उनके समायोजन को बाधित करता है।

मध्यावस्था के संदर्भ में यह भी प्रतिकूल अभिवृत्ति है कि वो बार-बार बीमार होते है और उनकी अनुपस्थिति बहुत होती है अथवा वो गलतियाँ अधिक करते है और दुर्घटना की संभावना को बढ़ाते है। इन प्रतिकूल अभिवृत्तियों के कारण उनकी नौकरी के अवसरों पर नकरात्मक प्रभाव पड़ता है जबकि इस सम्बन्ध में हुए अध्ययन के निम्न निष्कर्ष है-

1. **माहिर** का अध्ययन बतलता है कि कई बातों में मध्य आयु के व्यक्ति कम आयु वाले कर्मचारियों से श्रेष्ठ होते हैं तथा अन्य बातों में उनके समान या उनसे थोडे कम होते हैं।

2. **डेस्माण्ड** ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि मध्यावस्था में 95% प्रतिशत व्यक्ति अशक्त

   नहीं होते और काम कर सकते है।

3. **बार्सज** का कथन है जिन कार्यो में अनुभव का महत्व है उनमें वो कम आयु वाले कर्मचारियों से श्रेश्ठ होते हैं उपस्थिति, ईमानदारी एवं तत्परता की दृश्टि से वो कम आयु के कर्मचारियों से श्रेश्ठ पाये गये है।

   उपरोक्त सभी कथनों से यह स्पष्ट होता है कि काम पर नियुक्त करते समय योग्यता पर विचार करना चाहिए आयु पर नहीं।

6. **<u>अंशकालिक एवं भाड़े पर रखने की नीति, के कारण प्रभावित समायोजनः</u>**-1920-30 के मध्य विशेषतः प्रथम महायुद्व के पश्चात् व्यापार व उद्योगों में भाड़े में रखने की प्रथा चली जिससे पेन्शन न देनी पड़े व कम पैसे में ज्यादा काम लिया जा सके इस प्रथा में युवाओं को प्राथमिकता दी जाने लगी ओर मध्य आयु वर्ग के लोग में कार्य न मिलने का असन्तोष विकसित होने लगता है। ऐसा मंदी के दौर में भी देखा गया है अतः मंदी व भाड़े में रखने की प्रथा व्यावसायिक समायोजन को प्रभावित करती है।

7. **<u>कार्यस्थल पर परिवर्तित परिस्थितियों का मध्यावस्था के कर्मियों पर प्रभावः</u>**- वर्तमान समय में व्यवसाय एवं उद्योग धंन्धों में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं शिक्षा, व्यवसाय में प्रशिक्षण, व्यवसाय में विशेषीकण**(Specialization)** तकनीक में परिवर्ततन आदि नई नई प्रणालियाँ आती जा रही है। इस नई प्रणालियों के साथ समायोजन करना समय की आवश्यकता है अधिकांशतः यह देखा गया है कि कर्मी वेतन बढ़ाने व कार्य के घंटो में कमी करने की मांग करते हैं जबकि किसी भी उद्योग का मालिक अधिक से अधिक कार्य कम पैसों में करवाना चाहता है।

‘‘ यह माना जाता है नई तकनीक व नई प्रणालियों को सीखने की उम्र या नई प्रणालियों को अपनाने की योग्यता 30-40 वर्ष के मध्य घटने लगती है तथा चालीस से पचास के मध्य घट जाती है परिणामस्वरूप उनका सीखने का अभिप्रेरण कम हो जाता है।‘‘ **(बेजिक)**

अतः उपरोक्त स्थितियों में नये कार्य को सीखने की अनिच्छा, नये कार्य व प्रणाली की सीखने की गति में कमी आदि स्थितियाँ मध्यावस्था के समायोजन की योग्यता को घटा देती है जो इस आयु वर्ग के लोगों के काम मिलने के अवसरों में कमी कर देता है।

पर यहाँ यह भी बताना आवश्कीय है कि नौकरी पर रहते हुए कार्य सीखने पर जो अध्ययन हुए है उनके अनुसार-‘‘मध्यवयस्क स्त्री-पुरूष कम आयु वालों की अपेक्षा धीरे सीखते है हांलाकि उनकी आंषिकक्षति-पूर्ति उनकी अधिक विश्वसनीयता अच्छी उपस्थिति और ईमानदारी से हो जाती है। ‘‘

1. **<u>समूह के साथ काम करने में समायोजन की कठिनाईः-</u>** व्यवसाय एवं उद्योगों में आधुनिक प्रणालियों में जो सबसे अधिक समायोजन मध्यावस्था के व्यक्तियों को करना पड़ता है वह लोगों के

समूह के साथ कार्य करने से समायोजन,जैसे- जब व्यक्ति समूह में कार्य करता है तो समुह में विभिन्न आयु वर्ग अर्थात उम्र में छोटे व बडे सभी कार्य करते है एसी स्थिति में समूह में बेहत्तर कार्य अच्छा समायोजन का दबाव बना रहता है, वर्तमान समय में व्यवसाय में विभिन्न समूह के साथ काम करने का प्रशिक्षण भी दिया जाता है परन्तु मध्यावस्था के अधिकांशतः लोग इस तरह के प्रशिक्षण से वंचित से है। जिस कारण वे समायोजन में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

बोर्जक (Brozek) ने कहा है कि बड़ी आयु के कार्मिकों के अन्दर कम आयु वालो के प्रति कुछ असहनीय होने की प्रवृत्ति भी होती है विशेष रूप से तब वो समझते है कम आयु का कर्मी काम से जी चुरा रहा है।

कार्य की गति में कमी:- मध्यवस्था में व्यक्ति के कार्य की गतिमें वृद्धि की उम्मीद नहीं की जा सकती चूंकि तनाव में रहने के कारण इस अवस्था के कर्मी प्रायः अपने उत्पादन को कम आयु के कर्मियों के उत्पादन के बराबर रख पाता है जो उत्तरदायित्व इन व्यक्तियों को सौपे जाते हैं ये वही तक सीमित रहते है नये कार्यो को सीखने में गति की बात विशेष रूप से अधिक होती है इन स्थितियों में उसकी कार्य की गति और कम हो जाती है वर्तमान समय में अधिकांश उद्योगों पर समय पर बल दिया जाता है जिसमें मध्य वर्ग कर्मी की नियुक्ति कम हो जाती है क्योकि नये कौशलों के प्रति उनकी गति का कम होने कि कारण, इस आयु वर्ग के स्त्री-पुरूष में तब कार्य छोड़ने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है जब एक निश्चित गति के साथ निरन्तर कार्य करते रहना पड़ता है जैसे-किसी मशीन या वाहन के साथ निरन्तर चलना आदि।

अतः उपरोक्त स्थितियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि यदि मध्य आयु वर्ग के व्यक्तियों में अपने कार्य के प्रतिसन्तोष रहता है वह अपनी अपेक्षाओं के अनुसार उपलब्धि प्राप्त करते है दूसरे समूह से सकारात्मक व्यवहार रहने पर उन्हें समायोजन करने में कम मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।

5.5 सेवानिवृत्त अवस्था के प्रति समायोजन (Adjustment to Retirement:-

आधुनिक समय में सेवानिवृति की उम्र 60-65 मानी गयी है भारत में पहले यह उम्र 58-60 थी अभी भी बहुत से संस्थानों में 58 उम्र ही सेवानिवृत की रखी गयी 60-65 करने के भी कई कारण बताये जाते हैं चूकिं स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धि, व्यक्ति के खान-पान में संन्तुलन, व्यायाम, योगा आदि ने व्यक्ति की औसत आयु में वृद्धि की है जो 60-65 के मध्य भी व्यक्ति कार्य करने में स्वंय को सक्षम समझता है तथा सरकारे व संस्थान भी ये मानते है कि इस उम्र तक व्यक्ति कार्य कर सकता है।

कुहनेन 1945- ने अपने अध्ययन में बताया कि अनेक स्त्री-पुरूषों में ऐच्छिक सेवानिवृत्ति की भावना होती है उनकी यह इच्छा मध्यवस्था की वृद्धि के साथ उत्तरोत्तर तीव्र होती जाती है।

यहाँ यह भी बताना आवश्यकीय है कि जब व्यक्ति अपने जीवन का अधिकांशसमय नौकरी या व्यवसाय में व्यतीत कर देता है और उस कार्य का अभ्यस्त हो जाता है तब यकायक उसकी सेवा निवृत्ति उसे अपनी जिम्मेदारियाँ छिन जाने का आभास कराती है इसलिए "**एलेक्सिस कैरेल**"ने कहा है "अवकाश युवा के लिए जितना खतरनाक होता है वृद्ध के लिए उससे भी अधिक खतरनाक होता है।"

इसलिए यह आवश्यक है कि सेवानिवृत्ति के बाद की अवधि में जो अधिक अवकाश मिलता है उसका सदुपयोग करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि सेवानिवृत्ति व्यक्ति नेय कौशल व रूचियाँ अपना सकें साथ ही सांस्कृतिक रूचियाँ बढाने के लिए प्रोत्साहन पा सकें।

एक दुःखी एवं असन्तुष्ट अवकाश प्राप्त व्यक्ति समूचे परिवार के लिए समस्यायें पैदा करने में सहायक होता है इस तरह के परिवेश में पारिवारिक सम्बन्धों में कड़वाहट आने लगती है। अतः एक सुखी दाम्पत्य जीवन व बेहत्तर परिवेश बनाने के लिए व्यक्ति को अवकाश प्राप्त केपश्चात आने वाली समस्याओं को जानना आवष्यकीय है।

सेवा निवृत्ति के पश्चात व्यक्ति के सम्मुख अनेक समस्यायें उपस्थित होती है जो उनके समायोजन को प्रभावित करती हैं समायोजन को प्रभावित करने वाले इन कारको पर निम्न चर्चा की जा रही है।

1. **उपलब्धियाँ एवं संन्तोष (Achievements and Satisfaction):-**. मध्यवस्था में अगर व्यक्ति अपनी डिग्री के अनुसार कार्य करते है उन्हें सफलता प्रतिष्ठा और अधिकार प्राप्त होते है और वे अनुभव करते है कि उन्होने अपने व्यवसायिक जीवन में वो सब प्राप्त किया जिसका उन्होने सपना देखा था तो सेवा निवृत्ति के पश्चात भी उनमें सन्तोष दिखाई देता है इसके विपरीत व्यवसायिक जीवन में असफलता अपनी समयानुसार कार्य नही मिलना आदि सेवानिवृत्त के पश्चात भी समायोजन को बाधित करता है।

महिलाओं के संदर्भ में यह धारणा रखी जाती है कि वो अपने व्यवसायिक जीवन व वैवाहिक जीवन में सामजस्य बनाकर कार्य करें ज बवह सेवानिवृत्त होती है तो उन्हें अनुभव होता है कि अपनी व्यवसाय के कारण अपनी पारिवारिक जीवन में वो बहुत सी जिम्मेदारियों को पूर्ण नही कर पाई इन धारणाओं के लिए हमारी रूढ़िया एवं संस्कृति भी जिम्मेदार है जो अनेक समायोजन को प्रभावित करती है।

2. **आर्थिक असुरक्षा (Economic Insecurity)**:- मध्य आयु वर्ग के व्यक्ति इस यथार्थ के जानते है कि सेवानिवृत्ति के पश्चात आर्थिक असुरक्षा से जूझना पडेगा सरकारी संस्थानों के इस आयु वर्ग को पैन्शन जैसी सुविधा दी जाती लेकिन तद्उपरान्त भी कमाई उतनी नही होती जितनी पहले थी अगर इस आयु वर्ग के व्यक्तियों ने कमाई के शिखर में बुढ़ापे के साधन जुटा लिए तो ठीक अन्यथा इनका जीवन आर्थिक असुरक्षा के दबाब में रहता है।

3. **पारिवारिक सदस्यों की अभिवृत्ति**:- सेवानिवृत्ति के पश्चात परिवार के अन्य सदस्यों की अवकाश प्राप्त व्यक्ति के प्रति अभिवृत्ति महत्वपूर्ण होती है अगर परिवार के सदस्य सेवानिवृत्ति व्यक्ति के प्रति सकारात्मक व्यवहार अभिवृत्ति रखते है, उसके साथ समय व्यतीत करते है ऐसे पारिवारिक परिवेश में व्यक्ति का समायोजन अच्छा होता है परन्तु इसके विपरीत अगर वह एकांकी है या पारिवारिक सदस्यों की अभिवृत्ति नकारात्मक है अथवा उपेक्षित करने की है ऐसे परिवेश में व्यक्ति के लिए बेहतर समायोजन करना मुश्किल होता है।

4. **वैयक्तिक अभिवृत्ति (Personal Attitude) :-**सेवानिवृत्ति के समायोजन को वैयक्तिक अभिवृत्ति भी प्रमाणित करता है अगर व्यक्ति अवकाश प्राप्ति के समय से ही आने वाले सामाजिक, आर्थिक एवं पारिवारिक परिवर्तन के प्रति मानसिक रूप से स्वंय को तत्पर कर ले और आने वाले परिवर्तनों के संदर्भ में व्यक्तिगत व सामूहिक परामर्श को स्थान दे तो समायोजन बाधित नहीं होता, इसके विपरीत अवकाष प्राप्ति के विचार को मन में न लाना, उसके लिए समुचित मनौवैज्ञानिक तैयारी न करना आदि बाते समायोजन को बाधित करती है।

अग्रलिखित कारकों को देखते हुए कहा जा सकता है, कि अवकाश प्राप्त व्यक्ति के समायोजन की सफलता के लिए आवश्यक है कि ऐसे व्यक्ति मानसिक रूप से सेवानिवृत्ति के लिए तैयार हो। इन्हें सेवानिवृत्ति के पश्चात नई रूचियों एवं कौशलों का प्रशिक्षण दिया जाय समायोजन में सफलता व्यक्ति की आर्थिक स्थिति एंव उपलब्धि (Achievement) पर भी निर्भर करता है यदि व्यक्ति ने उच्च मानकों पर उपलब्धि हासिल की है और उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी है तो परिवार व समय दोनो की अभिवृत्ति सकारात्मक होती है, साथ ही स्वेच्छा से लिया गया अवकाश में समायोजन बेहतर होता है परन्तु अनिवार्य सेवानिवृत्ति में कई बार व्यक्ति कार्य को जारी रखना चाहता है पर उसे सेवानिवृत्ति लेनी पड़ती है ऐसे व्यक्ति को समायोजन करने में मुश्किल होती है अथवा समायोजन करने में समय लगता है।

5.6 वृद्धावस्था में पारिवारिक जीवन में परिवर्तन (Change in family life in old age)

वृद्धावस्था जीवन की अन्तिम अवस्था है विद्वानों की माने तो 60 वर्ष की आयु को सर्वसम्मत मध्यवस्था व वृद्धावस्था की सीमा रेखा माना गया है इस परम्परानुसार वृद्धावस्था 60 से लेकर मृत्युपरन्त तक चलती रहती है वैसे तो वृद्धावस्था की समय सीमा एक निश्चत आयु में तय कर देना अच्छी कसौटी नहीं है क्योंकि जरण वस्तुतः जिस आयु से शुरू होता है वह अलग-अलग व्यक्तियों में बहुत भिन्न होती है।

वृद्धावस्था के प्रारम्भ होते ही शारीरिक व मानसिक क्षीणता प्रारम्भ हो जाती है वृद्ध व्यक्तियों को इस जानकारी से भी समायोजन करना पड़ता है कि आयु वृद्धि के साथ उनकी उपयोगिता घटती जा रही है सेवानिवृत्ति की स्थिति एवं उसके पष्चात नई परिस्थितियों में उन्हें समायोजन करना पड़ता है, परिवार में वृद्ध स्त्री पुरूषों को साहचर्य के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है बच्चें से उनका सम्पर्क या तो कम हो जाता है या उनका प्रभाव कम हो जाता है पारिवारिक परिस्थितयों परिवर्तित होने लगती है जो उनमें प्रतिबल या दबाब उत्पन्न करती है वृद्धवस्था में पारिवारिक जीवन में होने वाले बदलाव पर निम्न चर्चा की जा रही है-

1.**पति/पत्नि के साथ सम्बन्ध (Relationship with Spouse) :-** व्यक्ति का सेवाकाल से मुक्त होने अथवा सक्रिय जीवन को त्यागने के पश्चात अधिकाशा समय घर पर ही व्यतीत होता है ऐसी स्थिति में उसका सम्बन्ध पत्नि से तथा पत्नि का संबंध पति से कैसा है यह एक महत्वपूर्ण कारक है, यदि संबंध प्रसन्नता पूर्वक है तो जीवन बेहतर, यदि तनावपूर्ण है तो दोनो के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है ऐसे में व्यक्ति को यह समझ नही आता कि वह खाली समय में क्या करें पति/पत्नि के सम्बन्धों में

कडवाहट तथा खाली समय का सदुपयोग न कर पाना दोनो (पति-पत्नि) के समायोजन को बाधित करता है।

लैंगिक व्यवहार में परिवर्तन (Change in Sexual Behavior):-आमतौर पर लैगिंक अरूचि व नपुसंकता बुढ़ापे का परिणाम माना जाता है परन्तु ऐसा भी देखा गया है पत्नि के साथ मधुर सम्बन्धों का अभाव तथा सामाजिक निषेध आदि के प्रभाव के कारण भी यौनाकर्षण और भी कम हो जाता है।

Master & Hohnson 1968 का मत है कि लैगिकता की कोई स्वतः निर्धारित आयु नही है फिर भी बढती उम्र के करण उनमें रूचि घटती जाती है।

कीन्स ए.सी. (Kinsey A.C.):- ने कहा है कि स्वंय को नपुसंक समझना ही बहुधा उनके नपुंसकत्व का कारण बन जाता है।

इन अध्ययनों के अतिरिक्त ऐैसे भी साक्ष्य मिले है कि बुढ़ापे में यौन इच्छा काफी प्रबल हो जाती है परन्तु आम राय व प्रतिकूल सामाजिक अभिवृत्ति उसकी घटती हुई ईच्छा को सिद्ध करती है।

संतानों के साथ सम्बन्धों में परिवर्तन:-वृद्धावस्था में संतान से सम्बन्ध उतने अच्छे नही रह जाते, जितने अतीत में रहते है, कई बार रोजगार के सिलसिले में बच्चे बाहर जा चुके होते हैं या अपनी गृहस्थी बनाकर अलग बस जाते हैं ऐसी स्थिति में घर ''खाली रह जाता है''।

जो व्यक्ति पहले परिवार के सम्पूर्ण दायित्वों का वहन करता है वो अब सेवा निवृत्त हो चुका है तथा स्त्री जो पूर्व में माँ की भूमिका निभाती है तथा घर के सारे अधिकार उसके पास होते है वो अधिकार उन्हें छोड़ने पड़ते है ऐसी स्थिति में यदि वृद्ध व्यक्ति अपनी आयु एवं स्थिति के अनुसार परिवर्तन कर लेता है तो उसका बच्चों से सुखद सम्बन्ध रहता है अन्यथा उन्हें समायोजन में मुश्किलों का सामना करना पड़ता है जो उनके जीवन में तनाव व चिन्ता को बढ़ाता है।

माता-पिता का बच्चों पर आश्रित रहना ¼aParentat Dependency in Children½%& आयु बढ़ने के साथ माता-पिता की निर्भरता उनके बच्चों पर बढ़ जाती है वो सांवेगिक व आर्थिक रूप से उन पर आश्रित तो होते है पर उन पर अधिकार जताना नही छोड़ पाते जिसे वयस्क बच्चे बुरा मानते है और इसका पारिवारिक समायोजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, यदि वो समझौदावादी दृष्टिकोण रखते है अथवा अपनी भूमिका में थोड़ा परिर्माजन अथवा बदलाव ले आते हैं तो समायोजन पर अच्छा प्रभाव रहता है **हरलॉक(Hurlock 1975)** ने कहा है कि ऐसे माता-पिता जो आर्थिक दृष्टि से समर्थ है और जिनका वैवाहिक जीवन सुखद है वो निर्भरता से कम प्रभावित होते है, वैसे निर्भरता ऐसी कड़वी गोली है जिसे निगलना माता-पिता के लिए कठिन होता है।

वर्तमान समय में बच्चों का माता-पिता की वृद्धावस्था में उपेक्षित रवैया तथा माता-पिता का भी उन पर निर्भर न रहने के दृष्टिकोणों अथवा बच्चों द्वारा यह मानसिकता रखता कि माता-पिता उनके जीवन में दखल दे रहे हैं या उन्हें बाझ समझकर छोडने की मानसिकता ने वृद्धा आश्रम के चयन को बढ़ायाहै।

पौत्र-पौत्रियों के साथ सम्बन्ध (Relationship with Grand Children):- वर्तमान समय में भारत में संयुक्त परिवारों का चलन नहीं के बराबर हो गया पहले यह माना जाता था कि दादा-दादी व नाना-नानी का बच्चों पर आधिपत्य बना रहता है। वो बच्चों को समय व प्यार दोनों देते है। जिससे परिवार में स्थायित्व भी रहता है।

परन्तु आधुनिक समय में व्यवसायगत गतिशीलता के कारण तथा पाश्चात्य प्रभाव के कारण परिवार विभक्त होने लगे है। जिससे पारिवारिक जीवन में दादा-दादी व नाना -नानी की भूमिका पहले जैसी महत्वपूर्ण नहीं रही।

आधुनिक रंग में रंगे बच्चों को कई बार दादा-दादी मूल्यहीन समझने लगते हैं वही बच्चों भी उन्हें दकियानूसी मानकर उनकी उपेक्षा करते हैं जो पीढ़ियों के अन्तर को दर्शता है जिससे पारिवारिक रिष्तों में कड़वाहट आती है।

जीवन साथी की मृत्यु- वृद्धावस्था में जीवन साथी की मृत्यु स्त्री व पुरूष दोनों के लिए दुःख का सबसे बड़ा कारण होता है आमतौर पर यह चलन है कि विवाह के समय पुरूषों की उम्र स्त्रियों से अधिक होती है अतः पुरूषों की मृत्युदर ज्यादा होती है। चूकिं वृद्धावस्था में सामाजिक सम्बन्धों का दायरा घट जाता है साथ ही घटी हुई आय, बेटे-बेटी पर उनकी निर्भरता आदि कारण इस दुःख को कष्टकारी बना देते है।

अकेलापन - बुढापा जीवन का वह समय है जिसमें अकेलापन सबसे अधिक होता है सामान्यतौर पर बच्चे अपने व्यवसाय व बच्चों की शिक्षा दिक्षा में व्यस्त हो जाते हैं , अववाहित होना या जीवन साथी की मृत्यु आदि अनेक कारण उन्हें अकेलेपन का अहसास कराते है।

कुछ अध्ययन यह बताते है कि निम्न सामाजिक वर्ग की अपेक्षा उच्च सामाजिक वर्ग के लोग अधिक आत्मनिर्भर एवं अपने कार्यकाल को योजनानुसार चलाने में अधिक समर्थ होते हैं इससे प्रतीत होता है कि अकेलापन उच्च सामाजिक वर्ग की अपेक्षा निम्न सामाजिक वर्ग में अधिक गम्भीर समस्या है, परन्तु सामान्य तौर पर यह देखने को भी मिलता है कि उच्च व मध्यम वर्ग की अपेक्षा माता-पिता के प्रति दायित्व की भावना निम्न वर्ग में अधिक बलवती होती है।

पुर्नविवाह (Remarrage)**:** बुढापे में पति-पत्नि की मृत्यु के कारण अकेलेपन को दूर करने के लिए पुर्नविवाह एक उपाय है परन्तु इस उम्र में विवाह को जहाँ सामाजिक मान्यता नही मिलती वहीं नई सहयोगी के साथ सामजस्य परिवार व नये सम्बन्धियों से समायोजन करना दुष्कर होता है।

उपरोक्त सभी तथ्यों को देखते हुए कह सकते हैं कि सेवानिवृत्ति के पश्चात अथवा वृद्धावस्था में व्यक्ति को विभिन्न पारिवारिक परिवर्तनों से गुजरना पड़ता है सेवानिवृत्ति के पष्चात का खालीपन, संतानो के साथ बदलते रिश्ते बच्चों पर बढती निर्भरता जीवन साथी की मुत्यु व अकेलापन आदि अनेक कारण उसमें चिन्ता, तनाव एवं दबाब बढ़ाते है यदि व्यक्ति स्वयं को मानसिक रूप से समय के साथ बदलने के लिए तैयार हो जाता है तो पारिस्थियाँ काफी अनुकूल हो जाती है और समायोजन करना आसान हो जाता हैं।

5.7 सारांश :

मध्यावस्था की पारम्परिक आयु 40-60 मानी गई है इस आययु वर्ग में व्यक्ति को विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं व्यवसायिक समायोजन से जूझना पड़ता है व्यवसायिक समायोजन की अगर बात करें तो व्यवसायिक जीवन की सन्तुष्टि अनेक कारको पर निर्भर करती है जैसे- कार्य में सन्तुष्टि, पदोन्नति के अवसर, पति-पत्नि की एक-दूसरे के प्रति अभिवृत्ति, कार्यस्थल पर परिवर्तित परिस्थितियाँ तथा अंशकालिक एवं भाड़े मु रखने की नीति आदि कारण व्यवसायिक समायेजन को प्रभावित करते हैं।

मध्यावस्था के अन्तिम पड़ाव मे सेवानिवृत्ति की अवस्था आ जाती है भारत में सामान्य तौर पर सरकारी संस्थानों मे अवकाश प्राप्त की अवस्था 60.65 वर्ष है, गैर सरकारी संस्थानों में अधिकांशतः 58-60 वर्ष होती है। इस दौरान जीवन में आ रही नई परिस्थितियों एवं नये परिवेश के लिए पुनः नये सामजस्य करने पड़ते हैं क्योकि सेवानिवृत्ति व्यक्ति कि निरन्तर चली आ रही दिनचर्या में काफी बदलाव करती है।

1. उसके जीवन में खालीपन का अहसास होता है ताउम्र अपनी उपलब्धियों का लेखा जोखा, अर्थिक असुरक्षा, पारिवारिक सदस्यों के सेवानिवृत्त व्यक्ति के प्रति अभिवृत्ति आदि उसके समायोजन को प्रभावित करते हैं।

2. अगर व्यक्ति सेवानिवृत्ति के लिए मानसिक तौर पर तत्पर होता है और आने वाली समस्याओं के लिए स्वंय को तैयार करता है तो ऐसी स्थिति में उसे समायोजन करने में कम मुश्किलों का सामना करना पडता है, स्वैच्छिक अवकाश में भी व्यक्ति मानसिक रूप् से काफी हद तक तैयार रहता है।

यहाँ वुद्धावस्था की चर्चा करते हुए यह कहना समीचीत होगा कि वृद्धावस्था जीवन की अन्तिम अवस्था है वृद्धावस्था के प्रारम्भ होते ही शारीरिक एवं मानसिक क्षीणता आने लगती है इस उम्र में व्यक्ति को विभिन्न पारिवारिक परिर्वतनों से गुजरना पड़ता है जैसे- पति-पत्नि के सम्बन्धों में परिवर्तन, लैंगिक व्यवहार में परिवर्तन, संतानों के सम्बन्धों में परिवर्तन, पौत्र-पौत्रियों के साथ सम्बन्धों में परिवर्तन, जीवन साथी की मृत्यु, पुर्नविवाह एवं अकेलापन आदि कारक व्यक्ति में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक ढ़ग से प्रभावित करते हैं तथा समाज एवं परिवार में उसकी घटती हुई उपयोगिता का अहसास कराने लगती है।

5.8 स्वमूल्याकंन हेतु प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये है जिनके सम्मुख सत्य, असत्य का सही विकल्प चुनिये

1. सामान्य तौर पर मध्यावस्था की उम्र 40 से 60 मानी गयी है। ( )

2. मध्यावस्था में कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होती है। ( )

3. व्यवसाय में मिलने वाली निरन्तर प्रतिकूल अभिवृत्ति व्यक्ति के समायोजन को प्रभावित नही करती। ( )

4. स्वेच्छा से ली गई सेवानिवृत्ति को ऐच्छिक सेवा निवृत्ति कहते हैं। ( )

5. बृद्धावस्था में शारीरिक व मानसिक क्षीणता बढ़ जाती है। ( )

उत्तर- (1) सत्य, (2) असत्य, (3) असत्य, (4) सत्य, (5) सत्य।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मध्यावस्था से क्या तात्पर्य है मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन को प्रभावित करने वाले कारको पर प्रकाश डालियें?
2. सेवानिवृत्ति काल में व्यक्ति को किस प्रकार का समायोजन करना चाहिए?
3. बृद्धावस्था में पारिवारिक जीवन में आने वाले परिवर्तनो की व्याख्या कीजिये?
4. टिप्पणी लिखियें

(अ) मध्यावस्था में व्यवसायिक समायोजन

(ब) सेवानिवृत्ति अवस्था के प्रति समायोजन

5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची -

सिंह आर0 एन0 आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा

भाई योग्रन्द्र जीत विकासात्मक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर आग

Hurlock B Elizabeth Developmental Peycholgle Tata Me row Hill Edition

हरलॉक बी एलिजाबेथ- विकास मनोविज्ञान अनुवादक हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय गोवर्धन भट्ट दिल्ली विश्व वि0 द्वारा प्रकाशित।

इकाई 6. युवावस्था, मध्यावस्था एवं वृद्धावस्था के सम्बन्ध में इरिक्सन की संकल्पना; सफल वृद्धावस्था के संप्रत्यय एवं मृत्यु और मरण के प्रति अभिवृत्ति; वृद्धाश्रमों का योगदान एवं भूमिका (Erikson's Concept regarding Adulthood, Middle Age and Old age, Concept and Attitude towards Successful Aging, Death and Dying; Role and Contribution of 'Old Age Homes')

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 इरिक्सन का प्रत्यय

6.3.1 प्रौढ़ावस्था

6.3.2 मध्यावस्था

6.3.3 वृद्धावस्था

6.4 सफल वृद्धावस्था के प्रति अभिवृत्ति और प्रत्यय

6.5 मृत्यु और मरण

6.6 वृद्धावस्था निवास की भूमिका

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ की सूची

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना –

मध्यावस्था का विस्तार क्षेत्र चालीस वर्ष से लेकर साठ वर्ष तक माना जाता है, अवस्था की शुरूआत से लेकर अन्त तक कुछ न कुछ शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते है, लगभग साठ वर्ष की आयु में मध्यावस्था की समाप्ति के साथ होने वाले शारीरिक एवं मानसिक स्फूर्ति में क्षीणता आ जाती है। जो कि वृद्धावस्था के प्रारम्भ का लक्षण होता है, जैसा कि जीवन की अन्य अवस्थाओं में होता है। वैसे ही मध्यावस्था को एक ओर प्रौढ़ावस्था से दूसरी ओर वृद्धावस्था से पृथक करने वाले शारीरिक परिवर्तनों के प्रकट होने की आयु में बहुत बड़े व्यक्तिगत अन्तर पाये जाते हैं । व्यक्ति की रूचियों में परिवर्तन के कारण व्यक्ति अधिक गम्भीर एवं यथार्थवादी हो जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति सुख शान्ति एवं प्रतिष्ठा प्राप्ति का अधिक इच्छुक हो जाता है। और धर्नाजन के प्रति आकर्षण कम हो जाता है। इस अवस्था में धार्मिक निष्ठा में दृढ़ता आ जाती है।

जीवन की अन्य अवस्थाओं की तुलना में मध्यावस्था के सन्दर्भ में बहुत कम खोजबीन हुई है, क्योंकि कुछ समय पूर्व तक तथाकथित जीवन परिवर्तन से सम्बन्धित शारीरिक समस्याओं को छोड़कर ऐसी समस्याएँ कम ही बची थी, जो इतनी अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती थी मनोवैज्ञानिक बालको, किशोरों एवं नवप्रौढ़ों की समस्याओं के अध्ययन में ही उलझा हुआ था। मध्यावस्था व वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाले पुरूषों एवं स्त्रियों की संख्या में वृद्धि होने के साथ अनेक व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिकों का ध्यान मध्यावस्था और वृद्धावस्था की ओर आकर्षित हुआ। घर के अन्दर समायोजन की समस्याएँ मध्यावस्था में स्त्री-पुरूष के नौकरी की समस्याएँ तथा मानसिक शारीरिक आकर्षण की समस्याएँ मध्यावस्था में मुख्य रूप से देखी जाती है।

वृद्धावस्था के पूर्व मध्यावस्था जीवन को सर्वाधिक डराने वाली अवधि होती हैं। यह वह समय है, जिसमें पहुँचने की बात कोई भी प्रौढ़ तब तक स्वीकार करने को तैयार नहीं होता है, जब तक कि जन्मतिथि और दर्पण उसे ऐसा मानने को बाध्य न करे। स्त्रियों के लिये मध्यवय का तात्पर्य लैंगिक आकर्षण में कमी रूचियों में परिवर्तन होना है, जबकि पुरूषों के लिए मध्य वय का तात्पर्य शारीरिक स्फूर्ति एंव कामशक्ति का घटना है यह आयु वृद्धि का लक्षण है। मध्यावस्था के पश्चात् वृद्धावस्था में उत्पन्न हाने वालीउन शारीरिक, मानसिक सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को नकारा नहीं जा सकता है, जिसका सामना वृद्धजनों को किसी न किसी रूप में करना पड़ता है इस अवस्था में आयु वृद्धि के साथ-साथ व्यक्ति की शक्ति उसकी स्फूर्ति, काम करने की गति, कम हो जाती है, परन्तु कौशल (Skills) के द्वारा वह उनकी पूर्ति कर सकता है। कुहलेन (1953) ने वृद्धावस्था की तैयारी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, कि सम्पूर्ण प्रौढावस्था (30 वर्ष से 60 वर्ष) में निरन्तर सीखने रहने और

जीवन के कार्यों में व्यापक रूप से भाग लेने के लिये लिये प्रेरणा व प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से बनाई गई योजना ऐसी आदतों और व्यक्तिगत साधनों (ज्ञान, कौशल, अभिवृत्तियाँ और मूल्यबोध) का विकास करेगा, जो वर्तमान आयु और आगे आने वाली वृद्धावस्था में स्वस्थ समायोजन में सहायक होगा। वृद्धावस्था के लिए सबसे प्रभावशाली कार्यक्रम, जिसका क्षेत्र व्यापक एवं विविध बिन्दुओं वाला है, जो सभी आयु की आवश्यकता को पूरा करता है, जिसमें वृद्धावस्था भी सम्मिलित है।-(हेन्स एवं फेमिन्सिकी 1955)।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. मध्यावस्था और वृद्धावस्था के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. इरिक इरिक्सन के प्रत्यय (प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था एवं वृद्धावस्था) के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. सफल वृद्धावस्था के प्रति अभिवृत्ति और प्रत्यय के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
4. वृद्धावस्था के पश्चात् मृत्यु एवं मरण के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
5. वृद्धावस्था निवास भूमिका के सम्बन्ध में जान सकेंगें।

6.3 इरिक्सन का प्रत्यय-

इरिक इरिक्सन (1902) उन मनोविश्लेषकों में से एक है, जिन्हें सामान्यतः एक अहं मनोवैज्ञानिक के रूप में पहचान की गई है। इरिक इरिक्सन ने व्यक्तित्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन में फ्रायड (Freud) द्वारा प्रस्तावित विकासात्मक अवस्थाओं को स्वीकार करते हुए उसे व्यक्ति के पूरे जीवनकाल तक का विस्तृत अध्ययन किया। इन्होनें व्यक्तित्व को सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारकों के रूप में समझने की कोशिश की गई है। इसलिये इनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त को मनोसामाजिक सिद्धान्त की संज्ञा दी गई है। इरिक्सन का व्यक्तित्व सिद्धान्त भी मानव प्रकृति (Human Nature) के बारे में कुछ विशेष पूर्वकल्पना (Assumption) करता है।

पूर्वकल्पनाएँ इस प्रकार है-

1. इरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धान्त मानवप्रकृति में पूर्णतावाद (Halism)पर्यावरणीयता (Environmertalism) तथा परिवर्तनशीलता (Changea bility) को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया।

2. मानव-प्रकृति के अन्य पहलुओं जैसे-निर्धार्यता (Leterninism) विवेकपूर्णता (Rationality) वस्तुनिष्ठता (Objectivity) अग्रलक्षता (Proactivity) विषमस्थिति (Heterostasis) तथा ज्ञेयता (Knowability) को मनो सामाजिक सिद्धान्त में तुलनात्मक रूप से कम महत्व दिया गया है। इरिक्सन ने व्यक्तित्व के सिद्धान्त में अपना ध्यान अहं (Ego) का विकास एवं उसके कार्यों पर केन्द्रित किया है, तथा उनका सम्बन्ध उपाहं (Id)एवं पराहं (Super Ego) के विकास एवं कार्यों से न के बराबर है। अर्थात् उन्होने अपने इस सिद्धान्त में अन्य कारकों जैसे- जैविक कारक व्यवहारात्मक कारक, अनुभवात्मक कारक तथा सामाजिक कारकों की भूमिका को नजर अंदाज किया हैं। इरिक्सन के सिद्धान्त का केन्द्रिय बिन्दु यह है। कि मानव के व्यक्तित्व का विकास कई पूर्व निश्चित अवस्थाएँ जो सार्वभौमिक (Universal) होती है, से होकर होता है। जिस प्रक्रिया द्वारा ये अवस्थाएँ विकसित होती है। या विशेष नियम द्वारा नियन्त्रित होती है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Childhood and Society"(1963) में इरिक इरिक्सन ने मनोसामाजिक विकास की कई अवस्थाएँ बताई है। विकास की प्रत्येक अवस्था के होने का एक आदर्श समय होता है और प्रत्येक अवस्था एक क्रम में एक के बाद एक आती है और उनमें व्यक्तित्व का विकास जैविक परिपक्वता तथा सामाजिक एवं ऐतिहासिक बलों के अन्तः क्रिया के फलस्वरूप होता है इन सभी अवस्थाओं की कुछ खास विशेषताएँ होती है। -

1. प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था में व्यक्ति के जीवन काल के एक ऐसी वर्तन बिन्दु (Turning Point) से होता है, जो उस अवस्था में जैविक परिपक्वता तथा सामाजिक माँग दोनों की अन्तः क्रिया के फलस्वरूप व्यक्ति में उत्पन्न होता है।

2. प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था (Psychosocial Crisis) में घनात्मक और ऋणात्मक दोनों तरह के तत्व होते हैं। प्रत्येक अवस्था में उसके जैविक परिपक्वता तथा नये-नये सामाजिक माँग के कारण संधर्ष का व्यक्ति होना इरिक्सन अवश्यंभावी मानते है। यदि इस संधर्ष का व्यक्ति संतोष जनक तरीके से समाधान कर लेता है, तो इससे व्यक्ति के विकसित अंह में श्रृणात्मक तत्व अवशोषित हो जाते हैं । एक स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास के लिए धनात्मक तत्व का श्रृणात्मक तत्व की तुलना में अनुकूल अनुपात का होना अनिवार्य है।

3. प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था के संक्रान्ति को व्यक्ति को दूर करना होता हैं या उसका समाधान करना होता है। ऐसा नहीं करने से अनुकूली एंव उत्तम ढ़ग से उसका विकास मनोसामाजिक विकास की प्रत्येक अवस्था में नहीं हो पाता है। मनोसामाजिक विकास की प्रत्येक अवस्था में संक्राति का समाधान कर लेने पर व्यक्ति में एक विशेष मनोसामाजिक शक्ति की उत्पत्ति होती है, जिसे इरिक्सन ने सदाचार (Virtue)संज्ञा दी हैं

4. मनोसामाजिक विकास की प्रत्येक अवस्था में कर्मकांडता (Ritualization) कर्मकाण्ड (Ritual) तथा कर्मकाण्डवाद (Ritualizsation) होते हैं। इसे इरिक्सन तीन आर भी कहा गया है। (Erikson Three R's) से तात्पर्य समाज के दूसरे व्यक्ति के साथ सांस्कृतिक रूप से स्वीकृत ढ़ग से अन्तः क्रिया करने से होता है। इस तरह का व्यवहार थोड़े-थोड़े समय के बाद अर्थपूर्ण सन्दर्भ में दोहराये भी जाते हैं । अतः इनका अनुकूली महत्व होता है, कर्मकाण्ड से तात्पर्य वयस्क समुदाय द्वारा आवर्ती (Recurring) स्वरूप के महत्वपूर्ण घटनाओं को दर्शाने के लिए किये गए कार्यो से होता है। कर्मकाण्डवाद से तात्पर्य कर्मकाण्डता में उत्पन्न विकृति से होता है, जिसमें व्यक्ति का ध्यान स्वयं अपने ऊपर ही केन्द्रित होता है।

5. प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था का निर्माण उससे पहले की अवस्था में हुए विकासों से सम्बन्धित होता है। प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था और वृद्धावस्था के सन्दर्भ में इरिक्सन ने व्यक्तित्व सिद्धान्त में मनोसामाजिक विकास का वर्णन निम्नवत् किया है-

6.3.1 (1) प्रौढ़ावस्था- घनिष्ठता बनाम विलगन (Intimacy Versus Isolation) मनोसामाजिक विकास की यह अवस्था सामान्यतः 20 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर 30 साल की आयु तक की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति शादी-विवाह कर प्रारम्भिक पारिवारिक जिन्दगी में प्रवेश करता है। यहाँ युवक किसी न किसी व्यवसाय में अपने को लगातार अपना स्वतंत्र जीविकोपार्जन प्रारम्भ कर देता है। इरिक्सन के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति सच्चे अर्थ में दूसरों के साथ सामाजिक एवं लैंगिक सम्बन्ध विकसित करता है। व्यक्ति अपने आप के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध विकसित कर एक स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास कराता है इस मनोसामाजिक अवस्था का खतरा यह है, कि व्यक्ति दूसरों के साथ कुछ कारणों से सन्तोषजनक एंव घनिष्ठ वैयाक्तिक सम्बन्ध नहीं विकसित कर पाता हैं, और अपने आप में ही पूर्णतया खोया रहता है। इसे विलगन की संज्ञा दी जाती है। ऐसे व्यक्ति द्वारा जो अन्तर-सम्बन्ध कायम भी किये जाते हैं , वह भीतर से खोखला एंव सतही होता हैं, ऐसे लोगों में अपना धंधा या कार्य के प्रति नीरसता एवं व्यर्थता की मनोवृत्ति होती है, जब विलगन की मात्रा अत्यन्त अधिक हो जाती है, तो व्यक्ति में गैर सामाजिक व्यवहार (Anit-social behaviour) या मनोविकारी व्यवहार (Psychopathic behaviour) की प्रबलता बढ़ जाती है जब व्यक्ति धनिष्ठता बनाम विलगन से उत्पन्न संधर्ष का समाधान सफलतापूर्वक कर लेता है, तो इससे उसमें विशेष मनोसामाजिक शक्ति (Psycho-social strength) की उत्पत्ति होती है, जिसे स्नेह की संज्ञा दी जाती है। इरिक्सन का स्नेह से तात्पर्य किसी सम्बन्ध को कायम रखने में पारस्परिक समर्पण (Mutual Devotion) क्षमता से होता है। इस तरह के स्नेह की अभिव्यक्ति तब होती है। जब व्यक्ति दूसरों के प्रति आदर, उत्तरदायित्व एवं उत्तम देखभाल की मनोवृत्ति दिखलाता है।

इस अवस्था में सम्बन्धन जैसी कर्मकाण्डता का विकास होता है। जब व्यक्ति दूसरों के प्रति स्नेह दिखलाता है। तथा दोस्ती रखता है, तो वह दूसरों के साथ अपनी भावनाओं की साझेदारी करता है। वयस्कावस्था में सम्बन्ध जैसी कर्मकाण्डता की अभिव्यक्ति विवाह तथा अन्य सामाजिक क्रियाएँ जैसे कोई खेल लगातार कई दिनों तक अपने दोस्तों के साथ खेलना आदि के रूप में अभिव्यक्त होती है। कर्मकाण्डता में विकृति उत्पन्न होने से एक विशेष कर्मकांडवाद का जन्म होता है, सुशिष्टता (Elitism) की संज्ञा दी जाती है। इसमें व्यक्ति अपना एक मात्र (Exclusive) समूह विकसित कर लेता है, जिसके निर्माण का आधार कोई खास तरह की अभिरूचि होती है।

6.3.2 मध्यावस्था- सृजनात्मकता बनाम निष्क्रियता की अवस्था- मनोसामाजिक विकास की यह अवस्था 30 से 65 वर्ष तक मानी गई है। कि समाज के लिए अपनी क्षमता के अनुरूप कुछ करें। किसानों को अन्य उपजाकर कलाकारों को कलाएँ विकसित करके और प्रोफेसरों को विचारों का सृजन कर अपनी रचनात्मक वृत्ति का परिचय देना चाहिये। यदि सामाजिक अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए कोई व्यक्ति अपना योगदान देता है तो उसे अपनी उत्पादक वृत्ति से मानसिक संतुष्टि मिलती है। परन्तु यदि किसी व्यक्ति में सृजनात्मक क्षमता का अभाव हो। और वह निष्क्रिय ही बना रहे। तो वह हीनता की भावना से पीड़ित रहेगा।

इस अवस्था में व्यक्ति में जननात्मकता (Ieneratvity) का भाव उत्पन्न होता है। जननात्मकता का तात्पर्य व्यक्ति द्वारा अपने अगली पीढ़ी के लोगों के कल्याण तथा साथ-साथ उस समाज के लिए, जिसमें वो लोग रहेंगे, को उन्नत बनाने की चिन्ता से होता है। अर्थात् जननात्मकता का अर्थ बूढ़े व्यक्तियों में उन व्यक्तियों के कल्याण के बारे में दिखाये गए सोच समझें एवं चिन्ता से होता है, जो उनकी जगह लेने वाले होते हैं। जननात्मकता का अर्थ उत्पादकता (Productivity) तथा सर्जनात्मकता (Creativity) से भी होता है। जब व्यक्ति में जननात्मकता की चिन्ता उत्पन्न नहीं होती है, तो इससे स्थिरता उत्पन्न होने का खतरा बढ़ जाता है। जो एक तरह की आत्म-तल्लीनता (Self-Aborption) की अवस्था होती है, जिसमें व्यक्ति की अपनी वैयक्तिक आवश्यकताएँ एवं सुख-सुविधा ही सर्वोपरि होती है। ऐसे व्यक्ति को किसी-दूसरे की चिन्ता तक नहीं होती हैं वो सिर्फ अपने वैयक्तिक सुख-सुविधा के लिए ही परेशान रहता है।

इस अवस्था में मनोसामाजिक संक्रान्ति (Psychological Crisis) का सफलतापूर्वक समाधान होने से व्यक्ति में एक विशेष तरह की मनोसमाजिक शक्ति (Psychological Strength) की उत्पत्ति होती है, जिसे इरिक्सन ने देखभाल की संज्ञा दी हैं। देखभाल का गुण उदासीनता के गुण का एक विपरीत गुण है, इसमें दूसरों के कल्याण की चिन्ता अधिक होती है। इस अवस्था में कर्मकाण्डता की उत्पत्ति होती हैं, जिसमें व्यक्ति अगली पीढ़ी के मार्गदर्शन का बीड़ा उठाने को तत्पर रहता है।

वयस्कावस्था में इस कर्मकाण्डता की उत्पत्ति अभिव्यक्ति व्यक्ति में दूसरों के दुःख को समझने तथा उसके कष्ट का निवारण करने की प्रवृत्ति के रूप में विकसित होती है। यह प्रवृत्ति प्रजनन कर्मकाण्डता से उत्पन्न होने वाला एक प्रमुख कर्मकाण्ड हैं प्रजनन कर्मकाण्डता में विकृति होने से व्यक्ति में प्राधिकृततत्ता (Authoritism) उत्पन्न होती हैं, जिसमें व्यक्ति बिना किसी औचित्य के (Justification) ही प्राधिकार (Authority) का प्रयोग करने लगता है।

6.3.3 <u>वृद्धावस्था</u> - अहं सम्पूर्णता बनाम निराशा (Ego Integrity Versus Despair) इरिक्सन के मनोसामाजिक विकास की यह अन्तिम अवस्था होती है, जो लगभग 65 वर्ष तथा उससे अधिक की आयु तक की अवधि को अपने में सम्मिलित करती हैं। ये अवस्था पिछली अवस्थाओं की उपलब्धियों और असफलताओं की समीक्षा करता है। यदि वह पाता है। कि विकास की पिछली अवस्थाओं में पर्याप्त मात्रा में विश्वास (Trust) स्वतंत्रता (Autonomy) पहचान (Identity) धनिष्ठता (Intimacy) आदि के भाव विकसित कर चुका हैं, और समाज के लिए अपनी क्षमता के अनुरूप योगदान दे चुका है, तो वह जीवन की अन्तिम अवस्था को पूरे उत्साह के साथ गुजार देने में सक्षम होता है। इसके विपरीत जब कोई व्यक्ति यह महसूस करता है। कि उसने पिछली अवस्थाओं को ईमानदारी से नहीं व्यतीत किया है, तो वह निराशा का अनुभव करने लगता है, वह सोच-सोच कर दुःखी होता है, कि वह जीवन में कुछ नहीं कर पाया, और इस उदासीनता की भावना से वह अन्त तक त्रस्त रहता है।

प्रायः सभी संस्कृति में इस अवस्था को बुढ़ापा की अवस्था कहा गया हैं, जिसके

सामने कई तरह की चुनौतियाँ होती है, जिनमें गिरते हुए शारीरिक स्वास्थ्य एवं शक्ति के साथ उचित समायोजन, अवकाश प्राप्ति से आय में उत्पन्न कमी, अपने दोस्त या समकालीन की मृत्यु तथा अपने उम्र समूह के साथ सम्बन्धन (Affiliation) की आवश्यकता आदि मुख्य होते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति का ध्यान भविष्य से हटकर अपने बीते दिनों पर विशेषकर उसमें प्राप्त सफलताओं या असफलताओं की ओर अधिक होता है। इरिक्सन के अनुसार इस अवस्था में कोई स्पष्ट नयी मनोसामाजिक संक्रान्ति (Psychological Crisis) की उत्पत्ति नहीं होती है। व्यक्ति अपने सभी पिछले मनोसामाजिक अवस्थाओं की घटनाओं का समन्वय एवं मूल्यांकन करता है। इससे उसमें अहं सम्पूर्णता का भाव उत्पन्न होता है। इस अवस्था में व्यक्ति को मृत्यु से भय नहीं लगता हैं, क्योंकि ऐसे व्यक्ति अपने बाल-बच्चों एंव अन्य सर्जनात्मक उपलब्धियों के माध्यम से अपने अस्तित्व को जारी समझते है। इरिक्सन का यह भी मत हैं, कि यह वह अवस्था हैं, जिसमें व्यक्ति में परिपक्वता अपने वास्तविक अर्थ में पैदा होता है, तथा बुद्धिमत्ता का व्यवहारिक ज्ञान (Practical Sense of wisdom) व्यक्ति में उत्पन्न होता है। परिपक्वता इस अवस्था की प्रमुख मनोसामाजिक शक्ति है। इस अवस्था में कोई-कोई व्यक्ति अपने बीते मनोसामाजिक अवस्थाओं में उत्पन्न असफलताओं से चिन्तित भी रहता है। और ऐसे लोग अपनी

जिन्दगी को अपूरित इच्छाओं आवश्यकताओं एवं भटके हुए निर्देशों का एक बन्डल या ढेर मानते है। इससे उनमें निराशा उत्पन्न होती है, और अपने को असहाय एवं निर्बल समझने लगते है। यदि इस तरह की भावना प्रबल हुई तो उसमें मानसिक विषाद (Mental Depression) भी उत्पन्न हो जाता है।

इस अवस्था में व्यक्ति में समन्वय जैसे कर्मकांडता (Ritualization) का विकास होता है। जिसमें व्यक्ति अपनी जिन्दगी की वास्तविकताओं (Realities) में अर्थ एवं बुद्धिमत्ता की खोज करता है। इससे जो कर्मकांड विकसित होते है, उनमें अवकाश प्राप्ति, अपने पुत्र एवं पौत्रों के यहाँ जाकर कुछ समय बिताना आदि प्रमुख है। ऐसे बुजुर्ग व्यक्ति जिनमें अहं-सम्पूर्णता विकसित नहीं हो पाती है। उनमें एक विशेष कर्मकाण्डता की उत्पत्ति का खतरा बढ़ जाता है। जिसे बुद्धिमत्ता ¼Sapientism½ कहा जाता है। जहाँ व्यक्ति अपने आप को ज्ञानवान या विवेकी होने का ढकोसला करता है। ताकि वह अपनी निराशा एवं कुण्ठा के भाव को छिपा सके।

6.4 वृद्धावस्था के प्रति अभिवृत्ति और प्रत्यय

जैसे-जैसे हम वृद्धावस्था की ओर बढ़ते है। हमारा शरीर निरन्तर कमजोर होता जाता है, क्योकि नये सेल्स बनना कम हो जाते हैं । या इनका निर्माण लगभग समाप्त होने लगता है, इसी कारण शरीर में तीव्रगति से नाकारात्मक परिवर्तन होने लगते है, इसे ही सामान्य भाषा में AGING कहा जाता है। रहन-सहन की बेहतर स्थितियाँ, चिकित्सा सुविधाएँ, सफलताएँ एवं बेहतर शारीरिक स्वास्थ्य भी वृद्धावस्था पर काफी सीमा तक नियन्त्रण कर लेता है लेकिन यह सत्य है। कि देर सबेर वृद्धावस्था का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर नजर आने ही लगता है। अनेक अध्ययनों के आधार पर ये सिद्ध हुआ है कि महिलाओं पर वृद्धावस्था का असर पुरूषों की अपेक्षा जल्दी पड़ने लगता है।

वृद्धावस्था जीवन की अन्तिम अवस्था होती है इस अवस्था का प्रारम्भ 65 वर्ष से माना जाता है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मानसिक शाक्तियों का ह्रास बड़ी तेजी से होता है, शारीरिक शक्ति कार्य-क्षमता तथा प्रतिक्रिया की गति में कमी आ जाती है। शारीरिक परिवर्तनों एवं मानसिक परिवर्तनों के साथ रूचियों एवं मनोवृत्तियों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते है। सामान्य बौद्धिक योग्यता, रचनात्मक चिन्तन तथा सीखने की क्षमताएँ शिथिल पड़ जाती है।

वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति की भी तेजी से लोप होने लगता है, इनके लिए उच्च काटि की उपलब्धियाँ प्रायः असम्भव हो जाती है। शारीरिक शक्ति और मानसिक क्षमताओं में मन्दता आ जाने के कारण वृद्ध व्यक्तियों का समायोजन प्रायः निम्न स्तरीय और असंतोषजनक हो जाता है, और परिणामस्वरूप अनेक वृद्धाजन प्रायः बाल सुलभ अथवा बाल्यकालीन आचरणों का प्रदर्शन करने लगते है। वृद्धावस्था में व्यक्ति का समाजिक सम्पर्क प्रायः घट जाता है, और वह सामाजिक कार्यक्रमों में भाग

नहीं ले पाता है। व्यक्ति किसी भी आयु में जीवन में किस प्रकार का समायोजन करता है। वह अधिकांशतः उसके प्रारम्भिक अनुभवों के ऊपर निर्भर करता है। वृद्धावस्था के अध्ययनों से पता चलता है, कि इस अवस्था में समायोजन का अच्छा होना अधिकांशतः वृद्धावस्था के पहले समायोजन के अच्छे होने का फल होता है। वृद्धावस्था में समायोजन को अच्छा बनाने की तैयारी के लिए बालको को ये बात सिखानी चाहियें वास्तविकता को स्वीकार करना, अच्छे के साथ-साथ बुरे को भी ग्रहण करना, और उसे समभाव से अपनाना, दूसरों से इस प्रकार मेंल-जोल का व्यवहार करना, कि वे आजीवन उनसे अपना सुखद सम्बन्ध बनाये रखें, और दूसरों से स्नेह करने की क्षमता रखना, किसी व्यक्ति को प्राप्त संवेगात्मक परिपक्वत्ता का पैमाना है। जब नींव अच्छी नहीं होती है। तब घटती हुई शारीरिक और मानसिक शक्तियों के कारण वृद्ध व्यक्ति की अपने जीवन में आने वाले परिवर्तनों से समायोजन करने की क्षमता घट जाती है।

वृद्धावस्था में जीवन के तौर तरीकों के बदलने का मतलब है प्रौढावस्था के विशेष सामाजिक सम्बन्धों तथा भूमिकाओं का परित्याग कर देना और जीवन के बाद के वर्षों के विशेष सम्बन्धों तथा भूमिकाओं को अपनाना। सुसमायोजित जीवन के लिए व्यक्ति को अपने जीवन के ढांचे में अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा दूसरों की प्रत्याशाओं के अनुसार जीवन बिताने में समर्थ होना चाहिये। जब व्यक्ति को अपनी भूमिकाओं में परिवर्तन करना पड़ता हैं और विशेष रूप से जब यह परिर्वतन उतना ही मौलिक होता है, जितना वृद्धावस्था में स्वास्थ्य तथा पर्यावरणगत दबावों के कारण करना आवश्यक होता है, तब व्यक्ति के सुसमायोजित रहने की अपेक्षा कुसमायोजित रहने की सम्भावना बढ़ जाती है। आर्थिक सुरक्षा, देर से सेवा-निवृत्त होना, रहन सहन की अच्छी व्यवस्था तथा अच्छा स्वास्थ्य ये सब जीवन के बाद के वर्षों में परिवर्तित भूमिकाओं से समायोजनक करने में सहायक होते है किसी भी आयु में व्यक्ति जीवन के प्रति कितना सुसमायोजित रहता है। यह मुख्यता उसके पिछले अनुभवों पर निर्भर करता है।

वृद्धावस्था में व्यक्ति में व्यक्ति कभी-कभी अतिक्रियाशील हो जाता है। वह परिवार व समाज के वे काम भी काम भी अपने ऊपर ओढ़ लेता है, जिनकी उनसे अपेक्षा भी नहीं की जाती है। कठिन कार्यो के लिए भी आगे बढ़कर स्वयं को प्रस्तुत करना उनकी आदत में शुमार हो जाता है। वास्तव में इस स्थिति का कारण मानसिक स्तर पर अपनी घटती शारीरिक मानसिक क्षमता के प्रति भय होता है। व्यक्ति स्वीकार ही नहीं करना चाहता है कि उसमें युवावस्था वाला जोश और शक्तिभाव नहीं हैं, साथ हीवह यह भी चाहता हैं, कि समाज एवं उसके आस-पास के लोग यह भी मानें, कि उसमें वही पुरानी क्षमताएँ अब भी विद्यमान है। कभी-कभी इसका साकारात्मक प्रभाव भी पड़ता हैं, और यदि आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ अनुकूल हो। तो वास्तव में हीव्यक्ति की मनो-शारीरिक क्षमताओं के ह्रास

की गति धीमी पड़ जाती है। किन्तु इसके विपरीत यदि आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ अनुकूल न हो तो व्यक्ति की यह अति क्रियाशीलता न केवल उसकी मनो-शारीरिक क्षमता के ह्यस की गति को और बढ़ा देता हैं। अन्यथा उसे असफलताओं का भी सामना करना पड़ता हैं।

समाज में व्यक्ति की जो भूमिका होती हैं, वह उसकी योग्यता पर उतना निर्भर नहीं करती हैं, जितना कि इस बात पर कि उसके प्रति समाज का व्यवहार कैसा हैं, जब सामाजिक व्यवहार अनुकूल होता है। तब वृद्धों को ऐसी भूमिकाओं की अनुमति दे दी जाती है। जिसमें प्रतिष्ठा और सम्मान प्रमुख रहती है। किन्तु जब सामाजिक अभिवृत्तियाँ प्रतिकूल होती है। तब व्यक्ति के लिए कम ही भूमिकाएँ खुली रहती है। और ये हीन तथा कम प्रतिष्ठा व प्रभुत्व वाली होती है। विभिन्न समाजों में वृद्धों के साथ जो व्यवहार करने के रूढ़िगत तौर-तरीको पाये जाते हैं । उसमें उनके प्रति प्रायः नकारात्मक अभिवृत्ति (Negative attitude) ही अपनाया जाता है। समाज वृद्धों के साथ जैसा व्यवहार करता है, उसका उसके अहम् संप्रत्यय पर प्रभाव पड़ता है, और वह उसके व्यवहार में प्रकट होता हैं। जब सामाजिक अभिवृत्तियाँ प्रतिकूल होती है, तब ये वृद्धों के प्रतिकूल व्यवहार में प्रकट होती है, और यह प्रतिकूल व्यवहार प्रतिकूल सामाजिक अभिवृत्तियाँ है, इनके परिणाम स्वरूप थोड़ी सी भूमिकाएँ ऐसी बचती है, जिन्हें वे प्रतिष्ठा और सम्मान के साथ सकते है।

व्यक्ति के अधिकांश क्रिया-कलाप उनके भीतर पाई जानी वाली अभिवृत्तियों और रूचियों को प्रदर्शित करते हैं। किशोरावस्था में हमारी अभिवृत्तियों का स्वरूप् ही अद्भुत होता है। परन्तु जीवन की वृद्धावस्था में प्रवेश करते ही उनमें ऐसा परिवर्तन आ जाता है। जिसकी कल्पना करना कठिन है, अब इनके मित्रों की संख्या सीमित हो जाती है। अब इनकी अभिवृत्ति का झुकाव रूपयें- पैसे व अपने स्वास्थ्य के प्रति होता है। भले ही वे सक्रिय रूप से धन कमाने के योग्य नहीं रह जाते हैं , अपने परिवार में पुत्र-पुत्रियों के विवाह, उनकी नौकरी मकान की समस्याओं आदि में वृद्ध व्यक्ति रूचि प्रदर्शित करते हैं। नियमित दिनचर्या, पूजा- पाठ की और इसका झुकाव अधिक होता है। समाचार-पत्रों रेडियों, टेलीविजन के माध्यम से अपनी जिज्ञासा तृप्त करते रहते है। वृद्ध व्यक्ति की रूचि केवल उन कार्यों में बनी रहती है, जिनसे उन्हें मानसिक संतुष्टि मलती है और जिनमें व्यस्त रहने से उनका जीवन सुख के साथ व्यत्तीत होता है। वृद्ध व्यक्ति मुख्य रूप से प्रसन्नता और सुख की तलाश करता है उसकी रूचियाँ इन्हीं से सम्बन्धित होती है।

सुसमायेजित जीवन के लिए व्यक्ति को अपने जीवन के ढ़ाचे में अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा दूसरों की प्रत्याशाओं के अनुसार जीवन बिताने में समर्थ होना चाहिये। व्यक्ति जिस प्रकार का समायोजन करेगा, उस पर व्यक्ति की अपने प्रति और समाज उससे जिन बातों की आशा करता है, उनके प्रति जो अभिवृत्ति होती है। उसका प्रभाव पड़ता है। जब व्यक्ति अपनी बढ़ती उम्र के प्रति

प्रतिरोधी अभिवृत्ति रखता है। तब यह अभिवृत्ति सफल समायोजन में बाधक होती है। प्रतिरोधी अभिवृत्ति की प्रबलता न केवल वृद् व्यक्तियों के प्रति समाज की अभिवृत्ति पर जो हमारी संस्कृत्ति में कतई अनुकूल नहीं हैं। बल्कि व्यक्ति की अपनी हैसियत पर भी निर्भर करेगी। वह व्यक्ति जो आर्थिक रूप से सुरक्षित है। जिसकी पारिवारिक हैसियत अनुकूल है। तथा जो अच्छे स्वास्थ्य के कारण उन क्रियाओं को करता रहता है, जिनमें उसे आनंद आता है। उन लोगों की अपेक्षा जिनकी हैसियत कम सुरक्षित और कम सतोंषप्रद है, अपनी बढ़ती हुई उम्र में अच्छा समायोजन करेगा।

सफलतापूर्वक बुढ़ापा व्यत्तीत करने तथा वृद्धावस्था में अधिक से अधिक मानसिक संतुष्टि हासिल करने के लिए वृद् जनों को यथा सम्भव सक्रीय बने रहने की सलाह दी जाती है, विशेषज्ञों का विश्वास है, कि यदि कोई निरोग वृद् समुचित आहार लेता रहें, नियमित रूप् से व्यायाम करता रहें, और उत्तम सामाजिक सम्बन्धों तथा आवश्यक सहायता का लाभ उठाता रहें। तो उसकी अनेक क्षमताएँ उतनी शीध्रता से कमजोर नहीं होने पायेगी। जितना कि आमतौर पर समझा जाता है। इसलिए वृद्धजनों को नियमित रूप से सक्रीय रहना आवश्यक है। बुढ़ापे में सक्रीय रहने से शारीरिक और मानसिक दोनों तरह का लाभ प्राप्त होता है। शारीरिक क्षीणता के कारण वृद्धावस्था में व्यायाम करना तथा कठिनाइयों का सामना करना कठिन अवश्य होता है। परन्तु जिसने परिस्थितियों का सक्रीयता से सामना करने का संकल्प ले रखा है वह जीवन से अधिक संतुष्टि प्राप्त कर पाता है। बुढ़ापे में सक्रीय बने रहने के कारण व्यक्ति का अपने परिवार के सदस्यों तथा समाज के साथ उत्तम कोटि का समायोजन भी बना रहता है। जो लोग वृद्धावस्था मै में व्यवसाय से जुड़ जाते हैं उन्हें व्यावसायिक शून्यता भी नहीं महसूस होती बल्कि उन्हें कुछ धन भी मिलता रहता है।

<u>मृत्यु और मरण(Death and Dying)</u>:- वृद्धावस्था की सर्वाधिक गम्भीर समस्या मृत्यु है, जिसकी कल्पना से वृद् व्यक्ति निरन्तर भयभीत रहता है, और अन्त में एक दिन वह घड़ी आ ही जाती है, जिसे हम जीवन की संध्या कहते हैं , और व्यक्ति की जीवन लीला समाप्त हो जाती है, इस घटना को मृत्यु की संज्ञा दी गई है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता हुआ एक भ्रूण धीरे-धीरे एक वृद्ध व्यक्ति बन जाता है, यह क्रम ठीक उसी तरह चलता है, जिस तरह सूर्य सुबह उगता है, धीरे-धीरे शाम को वह डूब जाता है, ठीक यही क्रम मानव जीवन का है। वह शैशवस्था बचपनावस्था, बाल्यावस्था, यौवनावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था और अन्त में वृद्धावस्था तक पहुँचते हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। कार्ल युंग (Carl Young) ने वृद्धावस्था की तुलना डूबते हुए सूरज से की है।

विशेषज्ञों, मनोवैज्ञानिकों, विशेष रूप से चिकित्सकों का मत है, कि मृत्यु अचानक धटित नहीं होती है, बल्कि यह एक प्रक्रिया है। हृदय, मस्तिष्क तथा कोषों (Cells) के स्तर पर मृत्यु का विश्लेषण किया गया है, अतः मृत्यु के चार प्रकार बताये गए हैः-

1. नैदानिक मृत्यु (Clinical Death)
2. मस्तिष्कीय मृत्यु (Brain Death)
3. जैविक मृत्यु (Biological Death)
4. सामाजिक मृत्यु (Social Death)

1. **नैदानिक मृत्यु**- जब व्यक्ति के हृदय और फेफड़े काम करना बन्द कर देते है, तो उसकी सॉस रूक जाती है, और ये समझा जाता है, कि उस व्यक्ति की मृच्यु हो गई है। नैदानिक मृत्यु कहलाती है।

2. **मस्तिष्कीय मत्यु**- मस्तिष्क की मृत्यु उस समय घटित होती है, जब उस पर निरन्तर 8-10 मिनट तक ऑक्सीजन देते रहने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस दशा में यह माना जाता है कि मस्तिष्क ने क्रिया करना बन्द कर दिया है। सबसे पहले कार्टेक्स (Corter) काम करना बन्द कर देता है, इसके बाद मध्य मस्तिष्क (Mid Brain) निष्क्रिय हो जाता है। अंततः स्पाइनल कार्ड (Spinal Cord) की क्रियाएँ भी एक जाती है। इसके बाद व्यक्ति कोमा (Coma) में चला जाता है। और फिर व्यक्ति कभी होश में नहीं आता। किन्तु सब कार्टेक्स और मिड ब्रेन निष्क्रिय हो जाते हैं । तब भी शरीर के शेष भागों में क्रिया बनी रहती है, क्योंकि इन भागों का नियन्त्रण स्पाइनल कार्ड ही करता है। इस दशा में शरीर तो लम्बे समय तक जीवित रहता है। परन्तु पूर्णतः चेतना विहीन बना रहता है।

3. **जैविक मृत्यु (Biological Death**)- चिकित्सा विज्ञान का मानना है, कि हृदय और फेफड़ों के निष्क्रीय हो जाने बाद भी विभिन्न अंगों के कोश कुछ समय तक कार्य करते रहते है, किन्तु जब ये कोश भी कार्य करना बन्द कर देते है, तो इस स्थिति को जैविक मृत्यु कहा जाता है। यह दशा तब उत्पन्न होती ही है, जब हृदय और फेफड़ो कू तंतुओं में इलोक्ट्रिकल चार्ज नहीं दिखलाई पड़ता है।

4. **सामाजिक मृत्यु (Social Death)-** सामाजिक मृत्यु की अवधारणा सडनो (Sudnow 1967½ ने सबसे पहले प्रदान की यह सामाजिक स्तर पर किसी व्यक्ति को मृत घोषित कर दिये जाने की स्थिति होती है। परन्तु सम्भव है, कि व्यक्ति कि व्यक्ति पूरी जाँच कर लिये जाने पर वह क्लिनिकल और जैविक दृष्टि से मृत न हो, अतः सामाजिक मृत्यु की स्थिति भ्रामक हो सकती है, परन्तु यह सच है। कि सायंकाल के सूरज को डूबने से रोका नहीं जा सकता है।

मध्यावस्था में पहुँचकर कोई व्यक्ति अपने स्वास्थ्य का चहे जितना ध्यान रखें, किसी न किसी समय उसमें बुढ़ापे के लक्षण अवश्य उत्पन्न होने लगते है। कुछ चिकित्सकों का मानना है, कि कोई भी व्यक्ति बुढ़ापे के कारण नहीं मरता लोगों की मृत्यु इसलिये होती है। क्योंकि जीवन को सुरक्षित रखने वाली जैविक दैहिक एवं परिवेशीयकारकों की आपूर्ति वृद्धावस्था में रूक जाती है। विशेषज्ञों का मानना है, कि मस्तिष्क में केन्द्रित हाइपोथैलेमस और पिटयूटरी ग्रन्थि से किसी ऐसे हरमोन्स की उत्पत्ति होती है। जिसके कारण शरीर में नियोजित ढंग से ह्रास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इसलिये इसे ^Aging Hormone' कहा गया है। परिणाम स्वरूप शरीर में पोषक तत्वों के परिवर्तन की क्रिया प्रभावित हो जाती है, और बूढ़े व्यक्ति अनेक बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। वृद्धावस्था में जब शारीरिक अवययों (Organs) के बीच अंतःक्रिया बिगड़ जाती है, तो शारीरिक स्वास्थ्य और क्रियाशीलता प्रभावित होती है, और बुढ़ापे के लक्षण उत्पन्न होने लगते है।स्पेन्स (Sponce - 1989) के अनुसार शरीर में ऐसे भी जीन्स पाये जाते हैं , जो यह निर्धारित करते है, कि व्यक्ति का जीवन कब तक चलेगा। ऐसे जीन्स प्रारम्भिक वर्षो में तो कोशीय क्रियाओं को नियन्त्रित करते है परन्तु बाद में वे अपनी क्रिया बदल देते है। जीन्स की परिवर्तित क्रियाओं के कारण व्यक्ति की क्रियात्मक क्षमता में ह्रास आता है।

वृद्धावस्था में व्यक्ति की शारीरिक शक्ति प्रायः कमजोर पड़ जाती है, और इस गिरते स्वास्थ्य के कारण वे काफी चिन्तित हो जाते हैं। इतना ही नहीं, जब उन्हें मेडिकल सुविधा ऐसी परिस्थिति में किसी कारण से नहीं मिल पाती है, तो इससे समस्या और भी गम्भीर हो जाती है। और उनका मानसिक स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगता है। उम्र बीतने के साथ-साथ उनमें यह भी भावना मजबूत होने लगती है। कि अब वह मृत्यु के चंगुल में जा रहा है। वे सोचने लगते है, कि उनके अधिकतर दोस्तों की मृत्यु हो चुकी है, अतः अब उनकी भी बारी आ गयी है। जिससे वे चाहकर भी छुटकारा नहीं पा सकते है।

मृत्यु जीवन की महान निश्चितता हैं, हममें से कुछ की मृत्यु हमारे नियन्त्रण के दायरे से बाहर होगी। अथवा हममें से ज्यादातर खुद मौत के क्षण से अन्जान होंगे। इसके बावजूद भी मृत्यु तथा मरण का एक स्वस्थ तरीके से सामना किया जा सकता है। लोगों द्वारा मृत्यु तथा मरण को लेकर मतभेद को समझना तथा उसका सम्मान करे एक शांतिपूर्ण ढंग से मृत्यु तथा मरण के स्वस्थ तरीके को प्रचारित करता है। किसी मरते हुए व्यक्ति की अंतिम इच्छाओं को पूरा करना मृत्यु के निकट होने पर किया जाने वाला एक प्राथमिक पाठ्य क्रिया होती है। यदि कोई व्यक्ति किसी बीमारी की वजह से मर रहा है। तो आदर्श रूप से उसने अपने जीवनकाल में कैसे जीवन तथा मृत्यु से संम्बन्धित निर्णयों में भाग लिया होगा। अगर उसकी इच्छाएँ वास्तविक नहीं लगती है। तो मर रहे व्यक्ति के समक्ष विकल्प उठाना चाहिए। ताकि उसके अनुरोध को पूरी तरह सावधानीपूर्वक पूरा किया जा सके। यदि मर रहा व्यक्ति किसी कारणवश मुख्य फैसला लेने में सक्षम नहीं हो रहा है। तो हमें हर वो कार्य करने की भरपूर कोशिश करनी

चाहिए। जो वह व्यक्ति चाहता है। अगर व्यक्ति किसी अस्पताल में है। तो उसकी प्राकृतिक मृत्यु की इच्छा की सम्भावना सर्वाधिक होती है। इस स्थिति में जीवन के अंतिम दिनों तथा क्षणों में आराम बनाये रखना और एक प्राकृतिक मृत्यु की ओर पहुंचने के लिए निर्देशित करना ही एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए।

मृत्यु और मरण की अवस्थाएँ (चरण)

थैनाटालॉजी के सबसे प्रसिद्ध अग्रणी Elisabeth kubler Ross ने 200 बीमार लोगों का साक्षात्कार करने के पश्चात् मृत्यु से उबरने की पाँच अवस्थाओं को प्रस्तावित किया है। अपनी आगामी मृत्यु के बारे में जानने पर मर रहे व्यक्तियों की पहली प्रतिक्रिया अक्सर वंचित (Denial) होने की थी। जिसमें उन्होने इसे एक गलती मानते हुए सच्चाई से मना कर दिया वे अन्य चिकित्सक परामर्श तथा निदान की तलाश करते हैं। और ऐसा दिखावा करते हैं। कि ये स्थिति अपने आप ही चली जायेगी। धीरे-धीरे उन्हें जब ये एहसास होता है। कि वे मरने वाले है। उनके जीवन के अन्तिम दौर बीमारी की वजह से क्रोध (Anger) का अनुभव जीवन के साथ-साथ पूर्व परिपक्व तरीके से खत्म होता है। वे उन लोगों से ईष्या करने लगते है। जिन लोगों का जीवन जारी रहता है। खास-तौर पर तब जब उन्हें लगता है, कि उनके अपने जीवन की योजनाएँ तथा इच्छाएँ अधूरी रह जायेगी। मर रहे व्यक्ति भगवान अथवा किसी और धार्मिक व्यक्ति के साथ सौदा (Bargain) करने का प्रयास करते है । और अपने द्वारा किये गये गलत कार्यो के लिये माफी माँगने और उन्हें सुधारने का वायदा करने है। जब सौदेबाजी विफल हो जाती है। तब वे अवसाद और निराशा (Depnession) का अनुभव करते हैं। इस अवस्था में बीमार व्यक्ति पहले हो चुके स्वास्थ्य की हानि तथा परिवार और योजनाओं के आसन्न नुकसान पर शोक प्रकट कर सकता है। अन्त में, मरने वाला व्यक्ति (Inevitable) आने वाली हार (अपरिहार्य) (Accept) करके उनके तथा उनके प्रियजनों के बीच चीजों का आदान-प्रदान आसानी से होने के लिए रास्ता बनाए।

कॉबलर रॉस ने ये बताया। कि उपयुर्क्त पाँचों अवस्थाएँ लाक्षाणिक किन्तु पूर्ण नहीं है। सभी लोग न तो सारी अवस्थाओं में पूर्व ज्ञात तरीके से तरक्की करते है, और न ही लोगों को सभी अवस्थाएँ एक निश्चित क्रम में अनुभव होती है। इसके अतिरिक्त ये अवस्थाएँ सभी व्यक्तियों के हर हालात में सबसे स्वस्थ पैटर्न को प्रस्तुत नहीं करती है। कॉबलर रॉस तथा अन्य ने अपने अध्ययन में पाया। कि जिस व्यक्ति के प्रियजन इन पाँचों अवस्थाओं से गुजर कर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। वह व्यक्ति भी उन्ही पाँचों अवस्थाओं से गुजर कर ही मृत्यु का सामना नहीं कर रहा है। तो उसके पास अन्तिम क्षणों के हालात को समायोजित करने के लिए अधिक समय होता है। वास्तव में मरण व्यक्तिगत विकास की वृद्धि का समय हो सकता है। जीवन की समीक्षा या प्रक्रिया लोगों को अपने जीवन की महत्ता को परखने तथा अधूरे कार्य खत्म करके या उनमें परिवर्तन करके मृत्यु के लिए तैयार होने में मदद करता है। कई मर रहे व्यक्तियों ने बताया कि वे अब पूर्ण रूप से यह जान चुके है। कि कौन तथा क्या उनके लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

तथा वे अपने जीवन में किस समय और कब पूर्ण रूप से आनन्दित हुए थे। कई लोगों ने यह भी बताया कि मृत्यु धार्मिक जागृति और अतिक्रमण का समय होता है

6.6 वृद्धावस्था निवास की भूमिका

वृद्ध व्यक्तियों का एक बड़ा वर्ग अपनी निजी गृहस्थी में रहते है, वे उसी में रहना पसन्द करते हैं। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए ये अध्ययन वृद्ध व्यक्तियों का उनके पारिवारिक वातावरण के साथ अन्तर्क्रिया पर केन्द्रित है। आवास की भूमिका पर कुछ सैद्धान्तिक मान्यताओं जैसे-सामर्थ्य सिद्धान्त, परिप्रेक्ष्य, निरन्तरता सिद्धान्त परिप्रेक्ष्य खाली समय और रोजमर्रा जीवन की गतितिवधियों को शोध पर्यावरण अनुकूलन परिप्रेक्ष्य तथा पर्यावरणीय वृद्ध विज्ञान के दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। पहले हुए शोधों से यह ज्ञात हुआ है। कि पर्यावरण के प्रांसगिक योग्यता नुकसान जैसे-गतिशीलता हानि और उद्देश्य के रहने की व्यवस्था के बीच एक मजबूत सम्बन्ध है। जबकि घरों में वृद्धावस्था का व्यक्तिपरक अर्थ (परिचित्रता व उत्तेजना जैसी प्रक्रियाओं) प्रांसगिक योग्यता के साथ अथवा उसके बिना भी बहुत कम ध्यान दिया जाता है।

हममें से ज्यादातर लोगों के माता-पिता का वृद्धावस्था में सेवानिवृत्त निवास में रहने का विचार भले ही हमें अच्छा न लगे पर आज के इस आधुनिकता के दौर में जहाँ ज्यादातर युवा जब घर से बाहर या दूसरे देशों में नौकरी करता है, तो उस समय माता-पिता को एक सेवानिवृत्त निवास में रखने का विचार ही शायद सबसे बेहतरीन विकल्प होता है। निम्न कुछ प्रमुख कारण है। जिसकी वजह से सेवानिवृत्त निवास आज एक आवश्यकता बन गई है।-

1. **<u>बच्चों का घर से दूर काम करना</u>**- आजकल ज्यादातर लोग काम के सिलसिले में अपने गृह निवास को छोड़कर दूसरे शहरों या विदेशों में रहते है। और वृद्ध माता-पिता घर पर अकेले रह जाते हैं। और उनकी देखभाल के लिए कोई नहीं रह जाता है। ऐसे में एक सेवानिवृत्त निवास उन्हें एक समूह में रहकर एक विस्तृत परिवार के होने का एहसास प्रदान करता है।

2. **वृद्ध लोगों की सुरक्षा का मुद्दा**- आजकल वृद्ध लोगों के खिलाफ जुर्म को अंजाम देने की वारदातें बहुत आम बात हो गई है। क्योंकि वे एक आसान और कमजोर लक्ष्य होते हैं। एक सेवानिवृत्त निवास वहाँ पर आने वाले लोगों तथा उनकी गतिविधियों पर निरन्तर बारीक नजर रख के उन्हें सुरक्षा प्रदान करता है। साथ ही CCTV (Closed Circuit Television Camera) तथा Video Intercom जैसे उपकरणों द्वारा सेवानिवृत्त निवास में होने वाली गतिविधियों पर निरन्तर निगरानी रखी जाती है।

3. **एक जैसी सोच का समुदाय**- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। और मित्र हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। जब व्यक्ति अपनी नौकरी से सेवानिवृत्त हो जाते हैं । तो वे अपने सम-आयु वर्ग के सहकर्मियों के साथ रोज की जाने वाली बातचीत का अभाव महसूस करते हैं। एक निवास जहाँ पर रहने वाले लोग और पड़ोसी सभी एक समान आयु-वर्ग के हो। तब उसी आयु वर्ग के किसी एक व्यक्ति के लोग आसानी से तथा सुविधाजनक तरीके से उस माहौल में ढलकर एक सक्रिय सामाजिक जीवन जीते है।

4. **तनावमुक्त जीवन**- घर में रोजमर्रा के कार्य जैसे-खाना बनाना, कपड़े धुलना आदि भले ही मानसिक रूप से तनाव न देते हो, लेकिन वे शारीरिक रूप से काफी थका देते है। खासतौर पर वृद्ध व्यक्तियों को सेवानिवृत्त निवास में रोजमर्रा के ज्यातादार कार्य किस संस्था में वो रहते है। वो ही उनकी देखभाल करते हैं। ताकि वृद्ध व्यक्ति एक तनावमुक्त जीवन यापन कर करें।

5. **चिकित्सकीय सावधानी**- स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानी तथा चिकित्सकीय आकस्मिकता वृद्ध व्यक्तियों के सन्दर्भ में तनाव का मुख्य कारण होता है। क्योंकि सेवा-निवृत्त निवास खासतौर से वृद्ध व्यक्तियों के लिए बनाये जाते हैं । वहाँ चिकित्सकीय मदद हमेशा उपलब्ध रहती है। साथ ही साथ किसी आकस्मिक स्थिति को बेहतर ढ़ग से निपटने के लिये हमेशा चिकित्सकीय मदद उपलब्ध रहती है।

6. **एक निरन्तर साझेदारी**- आज के इस आधुनिक युग की एक कड़वी सच्चाई है, कि दुनिया की हर सुख-सुविधा होने के बावजूद कार्य के बोझ तथा काम के सन्दर्भ में पूर्व वायदों की वजह से बच्चे

आजकल अपने माँ-बाप को जरूरत से बहुत कम समय दे पाते है। परिणाम स्वरूप, माता-पिता अपने आपको परिवार से कटा हुआ महसूस करते हैं। फलतः वे अलग-थलग रहने लगते है, जो मानसिक तनाव का एक बहुत बड़ा कारण है। ऐसे में एक निवास-स्थान जहाँ पर लोग एक दूसरे के सम्पर्क में रहते है। तथा एक दूसरे की देखभाल करते हैं। वहाँ पर कटाव तथा अलगाव की भावना लगभग खत्म हो जाती है।

एक तरफ जहाँ सेवानिवृत्त निवास बच्चों तथा माता-पिता को एक तनावमुक्त जीवन जीने का मौका प्रदान करते हैं। वही दूसरी और सेवा निवृत्त निवास के कुछ दूसरे गहरे पहलू भी है। जैसे-(1) एक बड़ी रकम जमा पूँजी के तौर पर बन्द (Locked) हो जाती है। यदि कोई वृद्ध व्यक्ति किसी कारण से वृद्धावस्था निवास को छोड़ता है, तो वह उस रकम को वापस नहीं ले सकता है। (2)कुछ लोग सिर्फ वृद्ध लोगों के बजाए मिश्रित आयु वर्ग में रहना पसन्द करते हैं। जो कि वृद्धावस्था निवास में मौजूद नहीं होती है।

6.7 सारांश

वृद्धावस्था के सम्बन्ध में आशावादी दृष्टिकोण रखना निश्चय ही भावनात्मक मनोवृत्ति का परिचायक है। सामान्यतः अनेक वृद्धजन अनुभवी, साहसी ,सहिष्णु विवेकशील उदार और धैर्यवान होते हैं। कुछ वृद्ध तो उत्साह से भरे होने के कारण अपनी सीमित शारीरिक क्षमता के बावजूद अभूतपूर्व मानसिक दृढ़ता, सृजनात्मकता कौशल और इच्छाशक्ति का प्रदर्शन करते रहते है। वे न तो अपने परिवार पर और न ही समाज पर आश्रित रहते है। परन्तु ऐसे उत्साही वृद्धों की संख्या बहुत ही कम है।

कुछ अन्य कोटि के वृद्ध वे लोग होते है, जो सामाजिक परिस्थितियों के साथ सुसमायोजित बने रहने की अद्भुत क्षमता रखते है। ऐसे लोग वृद्धावस्था की वास्तविकताओं को स्वीकारते हुए परिवार एवं समाज के साथ सरलता के साथ समझौता कर लेते है। और वृद्धावस्था की कमियों तथा कठिनाइयों के बीच प्रायः सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु उपरोक्त दोनों प्रकार के वृद्धजनों से सर्वथा भिन्न वे होते है, जो पूर्णता पराश्रयी (dependent) होकर जीवन के शेष दिनों को किसी तरह काटते है। इन वृद्धजनों में शारीरिक मानसिक ह्रास अपेक्षाकृत तीव्र गाति से होता हैं, और उन्हें विवश होकर दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। फलस्वरूप इनका जीवन सुख से पूर्णतः वंचित रहता है।

सभी वृद्धजनों की दिनचर्या एक जैसी नहीं होती। उनकी रूचियाँ और मनोवृत्तियाँ भी समान नहीं होती। कुछ तो काम को ही जीवन मानते है। और अपने पिछले वर्षो की दिनचर्या को दुहराते रहने का संकल्प ले लेते है। परन्तु कुछ लोग बुढ़ापे को विश्राम को अवस्था मानकर चारपाई पकड़ लेते है। और समय से पूर्व ही बुढ़ापे को आंमत्रित करते हैं। कुछ चिकित्सकों का मानना हैं कि कोई भी व्यक्ति

बुढ़ापे के कारण नहीं मरता। लोगों की मृत्यु इसलिये होती है, क्योंकि जीवन को सुरक्षित रखने वाली जैविक, दैहिक एवं परिवेशीय काराकों की आपूर्ति वृद्धावस्था में रूक जाती है। इन कारकों की जानकारी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इनके समुचित ज्ञान के आधार पर व्यक्ति के जीवन का नियोजन और प्रबन्धन बेहतर ढ़ग से किया जा सकता है। और यथासम्भव उसके जीवन प्रसार को व्यापक बनाया जा सकता है। साथ ही वृद्धावस्था के प्रति उसके मन में छिपे भय को भी निकाल बाहर फेंका जा सकता है।

6.8 शब्दावली

विलगन	- अलगाव
ह्रास	-कमी
सम्बन्धन	- मिलाना
प्राधिकार	- अधिकार, शक्ति
शिथिल	- धीमा (स्थिर)
पराश्रयी	- दूसरों पर आश्रित
वंचित	- अस्वीकार

6.9 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(1) **सही/गलत का निशान लगाइये-**

1. प्रौढ़ावस्था चालीस से साठ वर्ष के बीच की होती है।
2. इरिक-इरिक्सन का सिद्धान्त मनोसामाजिक विकास के सिद्धान्त पर आधारित है।
3. प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था धनात्मक तत्वों पर आधारित होती है।
4. जैसे-जैसे हम वृद्धावस्था की ओर बढ़ते है। हमारा शरीर निरन्तर मजबूत होता है।
5. वृद्धावस्था जीवन की अन्तिम अवस्था होती है।
6. वृद्धावस्था की सर्वाधिक गम्भीर समस्या मृत्यु है।
7. वृद्धावस्था बचपनावस्था की पुनरावृत्ति है।

(2) **लघु उत्तरीय प्रश्न -**

1. AGING किसे कहते हैं?
2. मृत्यु के कितने प्रकार बताएं गये है?
3. मस्तिष्कीय मृत्यु से आप क्या समझते हैं?
4. Old Age Home आज एक आवश्यकता क्यों बन गए हैं?
5. मनोसामाजिक सिद्धान्त संक्षिप्त व्याख्या कीजिये?

(3) - **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-**

1. मध्यावस्था ---------------------------से ---------------------------------के बीच की होती है।
2. इरिक इरिक्सन ने अपनी प्रसिद् पुस्तक-------------------में मनोसामाजिक विकास की कई अवस्थाएँ बताई है।
3. वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति का हास --से होता है।
4. जब व्यक्ति के हृदय और फेफड़े काम करना बन्द कर देते है। तो उसकी सांस रूक जाती है----- ---मृत्यु कहलाती है।
5. ------------------------- ने 200 बीमार लोगों के साक्षात्कार के बाद मृत्यु से उबरने की पाँच अवस्थाओं को प्रस्तावित किया।

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरूण कुमार सिंह, उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसी दास बंगलो रोड
2. दिल्ली
3. एलिजाबेथ बी0 हरलॉक, डेवलपमेण्ट, साइकोलॉजी, ए लाइफ स्पॉन एप्रोच, टाटा मैकग्रा हिल।
4. डॉ0 डी0 एन0 श्रीवास्तव और प्रीति वर्मा, बाल-विकास एवं बाल मनोविज्ञान, प्रकाशन विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. डॉ0 जे0 एन0 लाल –आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
6. डॉ0 आर0 एन0 सिंह- आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

7. डॉ0 राजेन्द्र सिहं डॉ0 जितेन्द्र कुमार उपाध्याय, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद सिंह -विकासात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली।
8. इन्टरनेट www.gogal.com

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इरिक इरिक्सन के मनो-सामाजिक विकास के परिप्रेक्ष्य में मध्यावस्था का वर्णन कीजिए?
2. सफल वृद्धावस्था के लिए क्या तैयारी होनी चाहिए?
3. परिवार के सदस्यों का वृद्धजनों के प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिए?
4. कॉबलर रॉस ने मृत्यु एवं मरण के कौन-कौन से चरण बताए है। व्याख्या कीजिए।

इकाई- 7 मानव विकास का अध्ययन की विधियां :अनुदैर्ध्य, क्रॉस-अनुभागीय और अनुक्रमिक अनुसंधान दृष्टिकोण; विकासात्मक अध्ययन में पद्धतिगत मुद्दे (Methods of studying human development: Longitudinal, Cross-sectional and Sequential Research Approaches; Methodological issues in developmental studies)

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 अनुदैर्ध्य विधि

7.3.1 अनुदैर्ध्य विधि की विशेषताएं

7.3.2 अनुदैर्ध्य विधि की सीमाएं

7.4 क्रॉस अनुभागीय विधि

7.4 .1 क्रॉस अनुभागीय विधि की विशेषताएं

7.4. 2 क्रॉस अनुभागीय विधि की सीमाएं

7.5 अनुक्रमिक अनुसंधान विधि

7.5.1 अनुक्रमिक अनुसंधान की विशेषताएं

7.5.2 अनुक्रमिक अनुसंधान की सीमाएं

7.6 विकासात्मक अध्ययन में पद्धतिगत मुद्दे

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

मानव विकास एक सतत प्रक्रिया है। यह गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक अनवरत चलती रहती है। व्यक्ति का जीवन काल विभिन्न अवस्थाओं में बंटा होता है और प्रत्येक अवस्था का अध्ययन एक या अधिक विधियों के सहारे किया जाता है। भिन्न-भिन्न आयु के व्यक्तियों का विकास क्रम व व्यवहार जानने के लिए मनोवैज्ञानिक द्वारा भिन्न-भिन्न तरह की विधियों का उपयोग किया जाता है। जो विधि गर्भकालीन अवस्था अथवा नवजात शिशुओं की विकास समस्याओं का अध्ययन करने के लिए उपयोगी है वह किशोरों व वयस्कों केअध्ययन के लिए भी उपयोगी हो यह आवश्यक नहीं है। उदाहरण स्वरूप- गर्भस्थ एवं नवजात शिशुओं के अध्ययन हेतु निरीक्षण एवं प्रयोगात्मक विधियां अधिक उपयोगी होती हैं जबकि किशोरों व वयस्कों का अध्ययन प्रश्नावली, साक्षात्कार एवं प्रक्षेपी विधियाों द्वारा भी किया जा सकता है।

मानव विकास से संबंधित समस्याओं का अध्ययन चाहे किसी भी विधि से क्यों न किया जाए अथवा एक या एक से अधिक विधि का प्रयोग करके ही क्यों न किया जाए- मनोविज्ञानियों द्वारा इन्हें दो अध्ययन प्रणालियों में विभाजित किया गया है- अनुदैर्ध्य अध्ययन प्रणाली और क्रॉस अनुभागीय अध्ययन प्रणाली। अनुदैर्ध्य अध्ययन प्रणाली एक दीर्घकालीन प्रणाली है जबकि क्रॉस अनुभागीय अध्ययन प्रणाली एक समकालीन अध्ययन प्रणाली है। इसके अतिरिक्त आये दिन मानव विकास के अध्ययन हेतु अनुक्रमिक अनुसंधान दृष्टिकोण का भी उपयोग किया जाता है जो अनुदैर्ध्य एवं क्रॉस अनुभागीय प्रणाली की विशेषताओं को अपने में समाहित किए हुए हैं।

प्रस्तुत इकाई में अनुदैर्ध्य, क्रॉस अनुभागीय एवं अनुक्रमिक अनुसंधान विधियों की विशेषताओं एवं सीमाओं पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही विकासात्मक अध्ययन में पद्धतिगत मुद्दे पर चर्चा की गई है । आशा है कि पाठकों को इस इकाई के अध्ययन से मानव विकास अध्ययन की विभिन्न विधियों की जानकारी हासिल करने के प्रति उत्सुकता में वृद्धि हो

7. 2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपका ज्ञान भंडार इतना हो जाएगा कि आप —

1. मानव विकास की विभिन्न अध्ययन विधियों पर चर्चा कर सकेंगे।
2. अनुदैर्ध्य विधि की विशेषताओं एवं सीमाओं को रेखांकित कर सकेंगे।
3. क्रॉस अनुभागीय विधि की विशेषताएं एवं सीमाओं पर प्रकाश डाल सकेंगे ।
4. अनुक्रमिक अनुसंधान विधि पर टिप्पणी लिख सकेंगे तथा

5. विकासात्मक अध्ययन में पद्धतिगत मुद्दे का विवेचन कर सकेंगे।

7.3 अनुदैर्ध्य विधि :--

अनुदैर्ध्य विधि मानव विकास के अध्ययन की एक ऐसी विधि है जिसमें मनोवैज्ञानिक बच्चों के एक ही समूह का अध्ययन भिन्न भिन्न समयों पर उनके व्यवहार एवं अन्य गुणों में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर करते हैं। यह कालानुक्रमिकविधि के नाम से भी जाना जाता है। इस अध्ययन विधि में एक ही आयु स्तर के बालकों के समूह को चुना जाता है, समूह के सभी बालकों की उम्र वृद्धि के साथ होने वाली मानसिक और शारीरिक योग्यताओं के विकास क्रम का निरीक्षण और मापन किया जाता है और अंत में प्राप्त आंकड़ों के आधार पर विकास क्रम को ज्ञात कर लिया जाता है। इस प्रणाली की सहायता से शारीरिक ऊंचाई, शारीरिक वजन, बुद्धि-लब्धि,भाषा विकास, सांवेगिक और सामाजिक विकास आदि से संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।इस प्रकार, अनुदैर्ध्य विधि मानव विकास के अध्ययन की एक ऐसी विधि है जिसमें प्रत्येक बच्चा, जिसे अध्ययन में सम्मिलित किया गया होता है, एक या अधिक शारीरिक मापकों पर सावधिक रूप से एक निश्चित समय अंतराल पर पूरे जीवन काल में मापा जाता है। उदाहरण स्वरूप, जिन बच्चों को एक खास शारीरिक मापक पर 5 वर्ष की अवस्था में अध्ययन किया जाता है, फिर उन्हें ही उन्हीं मापकों पर 6 वर्ष, 7 वर्ष, 8 वर्ष आदि अवस्थाओं में भी मापा जाता है।

स्पष्ट है कि अनुदैर्ध्य अध्ययन विधि एक समय अवधि शोध विधि है । इसे परिभाषित करते हुए सैंट्रोक (2006) ने लिखा है, "अनुदैर्ध्य अध्ययन विधि मैं एक ही व्यक्ति का एक समयावधि तक,प्रायः कई वर्षों या उससे भी अधिक समय तक, अध्ययन किया जाता है।" इस परिभाषा से भी स्पष्ट होता है कि (i) अनुदैर्ध्य अध्ययन विधि में व्यक्तियों के एक ही समूह का अध्ययन किया जाता है तथा (ii) अध्ययन बार-बार भिन्न-भिन्न समय अंतराल पर दोहराया जाता है। अध्ययन कितनी बार दोहराया जाएगा यह अध्ययनकर्ता के उद्देश्य पर निर्भर करता है। इस संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं है।

इसी प्रकार, एक अध्ययन से दूसरे अध्ययन के बीच का समय अंतराल क्या होगा, इस संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं है। इसका निर्णय अध्ययनकर्ता अध्ययन की जाने वाली समस्या के स्वरूप तथा अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए करता है। यदि एक अध्ययनकर्ता बालकों में भाषा के विकास का अध्ययन करना चाहता है तो वह 1 वर्ष की आयु के केवल 100 बच्चों को चुनकर प्रत्येक 6 माह पश्चात उनके भाषा विकास का निरीक्षण और मापन कर सकता है। जैसे-जैसे इन बच्चों की आयु बढ़ती जाएगी प्रत्येक छह माह पश्चात अध्ययनकर्ता इन बच्चों की भाषा से संबंधित क्रमिक विकास ओं का निरीक्षण और मापन करता जाएगा।

यद्यपि इस अध्ययन विधि में समय अधिक लगता है फिर भी इस विधि की सहायता से बुद्धि, व्यक्तित्व, संज्ञान आदि के विकास का अध्ययन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। इस संबंध में एक

महत्वपूर्ण अध्ययन मैकफ़ार्लेन एवं साथियों द्वारा 1954 में किया गया जिसमें 21 माह से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के समायोजन में आने वाली बाधाओं का अध्ययन किया गया। एक अन्य अध्ययन में सोनटैग इत्यादि ने 1958 में अनुदैर्ध्य विधि का प्रयोग कर यह जानने का प्रयास किया कि माता-पिता की अभिवृत्तियों और व्यवहार का बालकों के शीलगुण एवं बुद्धि आदि के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?

इसी प्रकार, कासपी एवं साथियों (1987,1988) ने एक ऐसे अनुदैर्ध्य अध्ययन की चर्चा की है जिसमें मनोवैज्ञानिकों ने यह जानने का प्रयास किया कि चरम व्यक्तित्व शैली (extreme personality style) जो बच्चे जीवन के शुरुआती दिनों में प्रदर्शित करते हैं क्या वयस्क होने पर भी ऐसा ही व्यवहार प्रदर्शित करते हैं? यानी, अत्यधिक क्रोध या फिर अत्यधिक शर्मिलापन और मिलनसार व्यवहार प्रदर्शित करने वाले बच्चे बड़े होने पर भी ऐसा ही व्यवहार प्रदर्शित करते हैं? इसके अतिरिक्त अध्ययनकर्ताओं ने यह जानने का भी प्रयास किया किकिस तरह की अनुभूति से व्यक्तित्व में स्थायित्व या परिवर्तन आता है और अधिक आक्रामकता तथा गैर मिलनसार व्यवहार का परिणाम लंबी अवधि के समायोजन पर क्या पड़ता है? इस अध्ययन में 8 वर्ष के बच्चों का चयन करके उनका अध्ययन भिन्न-भिन्न बच्चों में 30 वर्ष की उम्र तक किया गया और पाया गया कि दोनों व्यक्तित्व शैली वयस्कावस्था में भी करीब-करीब स्थाई रूप से बना रहता है।

अनुदैर्ध्य विधि से अध्ययन के तीन प्रकार हैं– पैनल अध्ययन, पूर्व प्रभावी अध्ययन एवं जत्था (समूह) अध्ययन। पैनल अध्ययन में शोधकर्ता सूचना प्राप्त करने हेतु एक स्थिर अंतराल पर प्रदत्त संग्रहण विधि, जैसे- सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करता है जो प्रायः कुछ वर्षों तक चलता रहता है। इसका प्रयोग ज्यादातर मात्रात्मक शोध हेतु किया जाता है, परंतु इसके द्वारा गुणात्मक प्रदत्त विश्लेषण भी किया जा सकता है।

यदि किसी अध्ययनकर्ता को पहली पहली बार किसी प्रतिदर्श से संबंधित परिवर्तन के बारे में यथार्थ सूचना प्राप्त करनी हो तो पैनल अध्ययन को अच्छा माना जाता है। उम्र संबंधी परिवर्तन के कारणों को जानने के लिए चिकित्सा के क्षेत्र के शोधार्थियों द्वारा पैनल अध्ययन का उपयोग किया जाता है। किसी शोध प्रतिदर्श में होने वाले परिवर्तन के कारणों की पहचान करने में यह विधि काफी उपयोगी है।

पूर्व प्रभावी अध्ययन में अध्ययनकर्ता पूर्व में किए गए व्यवस्थित अध्ययनों के परिणामों के पैटर्न से वर्तमान सूचना प्राप्त करने हेतु निर्भर रहता है। पूर्व प्रभावी अध्ययन भूतलक्षी होता है। इसमें पूर्व में किया गया अध्ययन वर्तमान सूचना का आधार होता है। किसी शोध अध्ययन के वैसे संदर्भों में पूर्व प्रभावी अध्ययन उपयोगी होता है जिसमें शोधकर्ता को शोध परिणाम पर जोखिम प्रभाव देखने की जल्दी होती है। चिकित्सीय शोधों में प्रारंभिक मापकों की जानकारी प्राप्त कर प्रदत्त से साहचर्यित करने मैं इस प्रकार का अध्ययन उपयोगी होता है।

जत्था या समूह अध्ययन को कोहॉर्ट अध्ययन भी कहते हैं जिसमें ऐसे लोगों के समूह से सूचना एकत्र करने की आवश्यकता होती है जिनमें किसी विशिष्ट लक्षण या शीलगुण की समानता होती है। इस तरह का समूह एक ही साथ एक विशेष घटना का अनुभव करता है। किसी विद्यालय में आदिवासी बच्चों का अध्ययन, ब्लैक बच्चों का अध्ययन आदि इसके उदाहरण है। कोहॉर्ट अध्ययन मैं शोधकर्ता अपने डाटा सेट के भीतर एक कारण संबंध स्थापित करना चाहता है। इसके लिए वह समूह के कुछ सदस्यों को एक विशिष्ट विशेषता या जोखिम कारक के बारे में बताता है और फिर इस जोखिम के परिणाम और उजागर चर (expose variable) पर इसके प्रभाव को रिकॉर्ड करते हैं।

7.3.1 अनुदैर्ध्य विधि की विशेषताएं

मानव विकास के अध्ययन की एक विधि के रूप में अनुदैर्ध्य विधि में निम्नलिखित विशेषताएं अंतर्निहित हैं –

(i) इस विधि में प्रतिदर्श के रूप में बच्चों का एक ही समूह कार्यरत रहता है। प्रतिदर्श को समान एवं तुल्य रखने की समस्या स्वतः समाप्त हो जाती है और प्रतिदर्श त्रुटि की संभावना नहीं रहती।

(ii) एक ही प्रतिदर्श का भिन्न-भिन्न समय अंतरालों पर अध्ययन करने से इस विधि द्वारा व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन क्रमबद्ध रूप से किया जाना संभव होता है।

(iii) इस विधि द्वारा बालकों के विकास का अध्ययन व्यक्तिगत और समूह दोनों ही स्तरों पर करना संभव होता है।

(iv) इस विधि में विकास प्रक्रियाओं का अनुमानात्मक ज्ञान प्राप्त न होकर शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है।

(v) विकास प्रक्रियाओं के आपसी संबंधों का अध्ययन करना इस विधि से सरल होता है।

(vi) इस विधि में कारण परिणाम संबंध को यथार्थ रूप में व्याख्या करना आसान होता है क्योंकि अध्ययन भिन्न-भिन्न बच्चों का भिन्न-भिन्न विकासात्मक अवस्थाओं में किया जाता है।

(vii) इस विधि से सामाजिक सांस्कृतिक कारकों या वातावरण संबंधी परिवर्तनों का बालकों के विकास व व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन भी किया जा सकता है।

(viii) इस विधि द्वारा किसी निश्चित अवधि में बच्चों के विकास के गुण एवं मात्रा आदि का ज्ञान भी प्राप्त किया जा सकता है।

(ix) यह विधि शोधार्थियों को बच्चों के विकास क्रम में परिपक्वता एवं अनुभव के बीच संबंध स्थापित करने का अवसर भी प्रदान करता है (हरलॉक, 1974)।

7.3.2 अनुदैर्ध्य विधि की सीमाएं

उपर्युक्त विशेषताओं के रहते हुए भी अनुदैर्ध्य विधि अपनी सीमाओं से मुक्त नहीं है। इस विधि की निम्नलिखित सीमाएं हैं —-

(i) चूँकि इस विधि में अध्ययन को लंबे समय तक जारी रखना पड़ता है, अतः इसमें समय और धन की काफी खपत होती है।

(ii) इस विधि द्वारा अध्ययन करने में अध्ययनकर्ता को बच्चों के विकास की अगली अवस्था का लंबे समय तक इंतजार करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रतिदर्श में सम्मिलित किए गए प्रयोज्यों की संख्या धीरे-धीरे घटती चली जाती है। कभी बच्चों के बीमार पड़ जाने के कारण तो कभी माता-पिता के स्थान परिवर्तन के कारण ऐसी स्थिति आती रहती है।

(iii) कतिपय बाहर माता-पिता द्वारा बच्चों को उसी अध्ययन में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जाती जबकि विकास क्रम जानने के लिए बच्चों का बार-बार अध्ययन में शामिल होना आवश्यक होता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रतिदर्श सिकुड़ कर अप्रतिनिधिक भी हो जाता है और उसे प्राप्त परिणाम की वैधता तथा सामान्यीकरण शक के घेरे में आ जाता है।

(iv) इस विधि में कभी-कभी अध्ययनकर्ता को बदलने की भी जरूरत पड़ती है क्योंकि लंबे समय तक अध्ययन चलने के कारण एक ही अध्ययनकर्ता का लगे रहना भी मुश्किल होता है।

(v) अनुदैर्ध्य विधि की एक महत्वपूर्ण सीमा यह है कि इसमें अध्ययन परिणाम पर प्रयोज्यो के अभ्यास का प्रभाव पड़तेदेखा गया है। इसका कारण यह है कि अनुदैर्ध्य अध्ययन प्रयोज्यो के एक ही समूह पर बार-बार किया जाता है, फलतः कुछ प्रयोज्य अपने अनुभव का विशेष फायदा उठाकर अनावश्यक रूप से अपने निष्पादन को उन्नत बना लेते हैं।

(vii) अनुदैर्ध्य अध्ययन की एक महत्वपूर्ण कमी अध्ययन परिणाम का जत्था (दस्ता) प्रभाव से प्रभावित होना भी है जिसे कोहॉर्ट प्रभाव भी कहते हैं। एक ही अवधि में जन्मे व्यक्तियों के समूह को जत्था समूह (cohort group)कहते हैं। अनुदैर्ध्य अध्ययन में चूंकि सिर्फ वैसे ही बच्चों का अध्ययन किया जाता है जो समान समयावधि में विकसित हुए हैं और जो एक विशेष सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अवस्था से प्रभावित हुए हैं। अतः किसी एक जत्था (दस्ता) पर किए गए अध्ययन और उससे प्राप्त परिणाम को दूसरे जत्थे (दस्ते) में पले बढ़े व विकसित हुए बच्चों पर लागू करना सही नहीं है। यानी, अनुदैर्ध्य विधि में क्रॉस- पीढ़ी समस्या(Cross generation problem) भी देखने को मिलती है।

7.4 क्रॉस अनुभागीय विधि

अनुदैर्ध्य विधि से ठीक विपरीत क्रॉस अनुभागीय विधि मानव विकास के अध्ययन की एक ऐसी विधि है जिसमें व्यवहार के विभिन्न पहलुओं के विकास का अध्ययन शोधकर्ता द्वारा भिन्न-भिन्न आयु समूहों के बच्चों पर एक साथ किया जाता है। इस विधि में शोधकर्ता भिन्न-भिन्न आयु समूहों एवं सामाजिक आर्थिक स्तरों के बच्चों का चयन उपयुक्त प्रतिदर्श विधियों से करके उनका कई समूह तैयार करता है और सभी समूह का अध्ययन एक ही समय में एक ही साथ करता है। फिर इन सभी समूहों में अध्ययन किए जाने वाले व्यवहार का मापन कर आपस में उनकी तुलना की जाती है।

इस प्रकार, इस अध्ययन विधि में कई दस्ता समूह(कोहार्ट ग्रुप) तैयार कर उनका एक ही समय मैं अध्ययन किया जाता है। फिर अध्ययन समस्या से संबंधित शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं के विकास के क्रमों का इन दस्ता समूहों मैं निरीक्षण किया जाता है अथवा मापन किया जाता है और अंत में प्राप्त आंकड़ों के औसत के आधार पर विकास के क्रम को ज्ञात कर लिया जाता है। इसे निम्नलिखित उदाहरण से समझा जा सकता है- मान लीजिए एक शोधकर्ता बच्चों में भाषा विकास का अध्ययन करना चाहता है। इसके लिए वह सर्वप्रथम 1 वर्ष से लेकर प्रत्येक 6 माह के अंतर को ध्यान में रखकर कुल 10 दस्ता समूह तैयार करता है (1 वर्ष, 1.5 वर्ष, 2 वर्ष, 2.5 वर्ष, 3 वर्ष, 3.5 वर्ष, 4 वर्ष, 4.5 वर्ष, 5 वर्ष एवं 5.5 वर्ष) अब वह प्रत्येक उम्र के दस्ता समूह में 100- 100 बच्चों को शामिल करता है। यह कार्य वह रैंडम प्रतिदर्श विधि से करता है। समूहों का निर्माण कर लेने के पश्चात अब वह विभिन्न आयु करके बच्चों के शब्द उच्चारण की योग्यता, शब्दों में व्यक्त करने की योग्यता, वाक्य रचना तथा शब्द भंडार आदि भाषा से संबंधित विभिन्न पहलुओं का निरीक्षण और मापन करके आंकड़े एकत्रित करता है तथा आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर पता लगाता है कि उम्र के अलग-अलग स्तरों में भाषा का विकास किस प्रकार होता है। इस प्रकार, क्रॉस अनुभागीय विधि का प्रयोग करके एक शोधकर्ता आसानी से पता लगा सकता है कि बच्चों में भाषा का विकास किस प्रकार होता है।

7.4 .1 क्रॉस अनुभागीय विधि की विशेषताएं —

क्रॉस अनुभागीय विधि में एक साथ कई विशेषताएं पाई गई हैं जिनमें कुछ महत्वपूर्ण हैं —--

1. चूंकि इस विधि में प्रयोज्यों के कई समूहों का अध्ययन एक ही समय में होता है, अतः इसमें समय की काफी बचत होती है।

2. चूंकि इस विधि द्वारा अध्ययनकर्ता बच्चों के संपूर्ण जीवन में घटित होने वाले विकासात्मक परिवर्तनों का अध्ययन एक ही बार में कर लेता है, अतः इसमें धन की खपत भी कम होती है।

3. इस विधि में अध्ययनकर्ता को काफी लंबे समय तक प्रयोज्यों से सहयोग की उम्मीद कायम रखने की जरूरत नहीं पड़ती।

4. इस विधि से अध्ययन करने पर अध्ययनकर्ता को एक ही साथ कई विशेषताओं, जैसे- आयु, आय, लिंग आदि को देखने का अवसर प्राप्त होता है।

5. चूंकि इस प्रणाली में अध्ययन समूहों का आकार बड़ा होता है, अतः प्रत्येक आयु सीमा के लिए आंकड़ों के आधार पर मानक भी तैयार हो जाते हैं।

6. इस विधि का एक लाभ यह भी है कि इसमें अध्ययनकर्ता को किसी भी अगली विकास की अवस्था का वर्षों तक इंतजार नहीं करना पड़ता है।

7. इस विधि से अध्ययन करने में कई अध्ययनकर्ताओं की जरूरत नहीं पड़ती, जैसा कि अनुदैर्ध्य विधि में देखी जाती है।

8. इसे प्राप्त करो को काफी लंबे समय तक संग्रहित रखने की भी जरूरत नहीं पड़ती।

7.4.2 क्रॉस अनुभागीय विधि की सीमाएं :------

इस विधि की निम्नलिखित सीमाएं हैं —

1. इस विधि से अध्ययन करने में समूह में होने वाले परिवर्तन की दिशा का ज्ञान नहीं हो पाता है। यानी, परिवर्तन क्या क्या होते हैं, किस प्रकार होते हैं, इसका सिर्फ अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अध्ययन भिन्न-भिन्न समय अंतराल पर न करके एक ही समय में कर लिया जाता है।

2. इस विधि द्वारा वैयक्तिक भिन्नता जैसी समस्याओं का अध्ययन करना भी संभव नहीं होता।

3. सांस्कृतिक, सामाजिक या वातावरण संबंधी परिवर्तनों का बच्चों के व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अध्ययन भी इस विधि से संभव नहीं है।

4. इस विधि में भी दस्ता प्रभाव देखने को मिलता है। यह प्रभाव तब देखने को मिलता है जब प्रयोज्यों के समूह में उम्र की भिन्नता अधिक पाई जाती है, जैसे- एक समूह 5 वर्ष के बच्चों का हो तो दूसरा 20 वर्ष के किशोरों का।

5. इस विधि द्वारा किसी एक बच्चे में होने वाला विकास तथा व्यवहारों में होने वाले परिवर्तनों को भी ठीक ढंग से अध्ययन नहीं किया जा सकता है।

7.5 अनुक्रमिक अनुसंधान विधि

अनु क्रमिक अनुसंधान विधि मानव विकास के अध्ययन की एक ऐसी विधि है जिसमें अनुदैर्ध्य विधि एवं क्रॉस अनुभागीय विधि दोनों की विशेषताएं पाई जाती हैं। यानी, इस विधि से अध्ययन करने में अध्ययनकर्ता जहां एक और अनुदैर्ध्य विधि का लाभ लेता है तो वहीं दूसरी ओर क्रॉस अनु भागीय विधि को भी प्रयोग में लाता है। वह इस तरह का डिजाइन बनाता है कि दोनों विधियों को एक साथ मिलाकर अध्ययन किया जा सके। इस अध्ययन विधि में शोधकर्ता विभिन्न आयु वर्ग के प्रयोज्यों का चयन करके कई दस्ता समूह बनाकर उसका भिन्न-भिन्न समय अंतराल पर अध्ययन करता है। उदाहरण स्वरूप, यदि शोधकर्ता बच्चों में संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन करना चाहता है तो वह कक्षा छह,सात एवं आठ के विद्यार्थियों का तीन दस्ता समूह बनाकर उसका अध्ययन दो वर्षों तक निम्नवत कर सकता है — पहले दस्ता समूह को वर्ग 6 में और फिर वर्ग 7 में जाने पर,दूसरे दस्ता समूह को वर्ग- 7में और फिर वर्ग 8 में जाने पर तथा तीसरे दस्ता समूह को वर्ग 8 में और फिर वर्ग 9 में जाने पर अध्ययन कर सकता है । इस अध्ययन विधि में अनुदैर्ध्य एवं क्रॉस अनुभागीय दोनों ही विधियों की विशेषताओं को सम्मिलित कर मानव विकास का अध्ययन कम समय और कम खर्च में किया जा सकता है।

7. 5 .1 अनुक्रमिक अनुसंधान विधि की विशेषताएं —

इस विधि की निम्नलिखित विशेषताएं हैं —

इस विधि में अध्ययनकर्ता इस बात का पता आसानी से लगा सकता है कि दस्ता प्रभाव उत्पन्न हो रहा है या नहीं? ऐसा वह एक ही आयु या कक्षा के विभिन्न बच्चों का आपस में तुलना करके पता कर सकता है।

1. इस अध्ययन विधि में अध्ययनकर्ता किसी व्यवहार विशेष का अध्ययन अनुदैर्ध्य एवं क्रॉस अनुभागीय दोनों ही विधियों से करके प्राप्त परिणाम की तुलना करके सही निष्कर्ष पर पहुंच सकता है।

2. इस विधि में एक लचीलापन यह है कि जरूरत के अनुसार अध्ययनकर्ता अध्ययन अवधि को घटा बढ़ा सकता है।

7. 5. 2 अनु क्रमिक अनुसंधान विधि की सीमाएं —

उपर्युक्त विशेषताओं के रहते हुए भी अनु क्रमिक अनुसंधान विधि की भी अपनी सीमाएं हैं —

1. क्रॉस अनुभागीय विधि की तुलना में यह अधिक समय साध्य एवं खर्चीली विधि है।
2. इस विधि से प्राप्त परिणामों के संबंध में एक प्रश्न प्राय: उठाया जाता है कि अध्ययन से प्राप्त विकासात्मक परिवर्तन दस्ता समूह से परे भी सामान्यीकृत किया जा सकता है ?

   उपर्युक्त परिसीमाओं के रहते हुए भी यह अध्ययन विधि मानव विकास के अध्ययन की एक लोकप्रिय विधि है क्योंकि यह अनुदैर्ध्य एवं क्रॉस अनुभागीय दोनों ही विधियों की जरूरतों को पूरा करती है।

7.6 विकासात्मक अध्ययन में पद्धतिगत मुद्दे

आज मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं में एक महत्वपूर्ण शाखा मानव विकास के अध्ययन से संबंधित है और मनोविज्ञान की सभी अध्ययन विधियां विकासात्मक समस्याओं के अध्ययन के लिए समान रूप से उपयोगी नहीं हैं । कुछ अध्ययन विधियों का महत्व अधिक तो कुछ का कम है। मानव विकास से संबंधित समस्याओं के अध्ययन में एक समय में एक अध्ययन विधि का उपयोग भी किया जा सकता है और एक ही साथ एक से अधिक विधियों को भी उपयोग में लाया जा सकता है। भिन्न-भिन्न आयु के बच्चों की समस्याओं के अध्ययन के लिए विभिन्न विधियां उपयोगी होती हैं। उदाहरण स्वरूप, गर्भकालीन अवस्था के शिशु अथवा नवजात शिशु की विकास समस्याओं का अध्ययन करने के लिए जहां निरीक्षण और प्रयोगात्मक विधियां उपयोग में लाई जाती हैं, वही व्यक्तिगत इतिहास पद्धति को भी आवश्यकतानुसार व्यवहार में लाया जाता है। दूसरी ओर, बड़े बच्चों के विकासात्मक अध्ययन में प्रश्नावली, साक्षात्कार, प्रक्षेपण विधि आदि का उपयोग भी सरलता से किया जा सकता है।

मानव विकास से संबंधित समस्याओं के अध्ययन में चाहे एक विधि का उपयोग किया जा रहा हो या एक साथ दो या दो से अधिक विधियों का, दोनों ही अवस्थाओं में दो अध्ययन प्रणालियों में से किसी एक अध्ययन प्रणाली का उपयोग अवश्य किया जाता है। ये अध्ययन प्रणालियां हैं – अनुदैर्ध्य प्रणाली तथा क्रॉस अनुभागीय प्रणाली। आजकल इन दोनों की सम्मिलित प्रणाली भी उपयोग में लाई जाती है जिसे अनुक्रमिक अनुसंधान विधि के नाम से जाना जाता है।

मानव विकास के अध्ययन में प्राचीन काल से ही कुछ कठिनाइयां रही हैं। प्राचीन समय के विद्वान समझते थे कि बच्चों की समस्याओं का अलग से अध्ययन करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह बच्चों को वयस्कों के अनुरूप समझते थे। रूसो,हार्बर्ट तथा इनके समकालीन दार्शनिकों ने यह स्थिर करने का प्रयास किया कि बच्चों का मानसिक जीवन वयस्कों से भिन्न होता है। इस दृष्टिकोण

ने बच्चों की समस्याओं के अध्ययन के लिए वैज्ञानिकों को प्रेरित किया। प्राचीन काल में बच्चों की समस्याओं के अध्ययन में दूसरी कठिनाई सुयोग्य वैज्ञानिकों की कमी भी थी।

मनोविज्ञान के विकास के साथ-साथ विज्ञान की अनेक विधियों का अनुकूलन किया गया और मानव विकास के वैज्ञानिक अध्ययन के फलस्वरूप अनुदैर्ध्य एवं क्रॉस अनुभागीय विधि का उपयोग होने लगा। परंतु अध्ययनकर्ताओं के सामने यह कठिनाई बनी रही कि उपयुक्त संख्या में बच्चों की उपलब्धता अध्ययन वास्ते कैसे हो? छोटी उम्र के बच्चों के अध्ययन में यह कठिनाई अधिक गंभीर थी क्योंकि जादू टोने और धर्मभीरूता के कारण वैज्ञानिक सोच का लोगों में अभाव था। वैज्ञानिक अध्ययनों में जहां अधिक प्रयोज्यों की आवश्यकता होती है वहां आज भी यह कठिनाई कुछ न कुछ मात्रा में अनुभव की जाती है। आज भी 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की अध्ययन हेतु उपलब्धता एक समस्या बनी हुई है।

7.7 सारांश

मानव विकास के अध्ययन हेतु मूलत: दो प्रणालियों को व्यवहार में लाया जाता है – अनुदैर्ध्य अध्ययन प्रणाली एवं क्रॉस अनुभागीय अध्ययन प्रणाली।

अनुदैर्ध्य अध्ययन प्रणाली मानव विकास के अध्ययन की एक ऐसी विधि है जिसमें मनोवैज्ञानिक बच्चों के एक ही समूह का अध्ययन भिन्न-भिन्न समयों पर उनके व्यवहार एवं अन्य गुणों में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर करते हैं। अनुदैर्ध्य विधि से अध्ययन के तीन प्रकार हैं – पैनल अध्ययन, पूर्व प्रभावी अध्ययन एवं दस्ता (जत्था) अध्ययन।

क्रॉस अनुभागीय विधि मानव विकास के अध्ययन की एक ऐसी विधि है जिसमें व्यवहार के विभिन्न पहलुओं के विकास का अध्ययन शोधकर्ता द्वारा भिन्न-भिन्न आयु समूह के बच्चों पर एक साथ किया जाता है। चूँकि यह अध्ययन एक ही समय में किया जाता है, इसलिए अनुदैर्ध्य विधि की तुलना में इसमें कम समय लगता है तथा धन की खपत भी कम होती है।

अनुक्रम अनुसंधान विधि में अनुदैर्ध्य एवं क्रॉस अनुभागीय दोनों ही विधि की विशेषताएं पाई जाती हैं। इस विधि में शोधकर्ता द्वारा इस तरह का डिजाइन बनाया जाता है कि दोनों विधियों को एक साथ मिलाकर अध्ययन किया जा सके।

मानव विकास का अध्ययन एक कठिन कार्य है और इसमें किसी एक पद्धति को अपनाकर अध्ययन करना कठिन है। गर्भावस्था से वृद्धावस्था के लंबे जीवन काल में विकासात्मक रमो का अध्ययन कभी एक तो कभी दो या अधिक विधियों को अपनाकर किया जाता है। गर्भावस्था के विकास क्रमों,शैशवावस्था के विकास क्रमों, बाल्यावस्था के विकास क्रमों , किशोरावस्था व वयस्कावस्था के

विकास क्रमों का अध्ययन किसी एक पद्धति से नहीं किया जा सकता है। आज भी 3 वर्ष से कम आयु के बच्चों का अध्ययन करने हेतु प्रयोज्यों की उपलब्धता एक समस्या बनी हुई है।

7.8 शब्दावली

पैनल अध्ययन: इसमें शोधकर्ता सूचना प्राप्त करने हेतु एक स्थिर अंतराल पर प्रदत संग्रहण करता है।

पूर्व प्रभावी अध्ययन: इसमें शोधकर्ता पूर्व में किए गए व्यवस्थित अध्ययनों के परिणामों के पैटर्न से वर्तमान सूचना प्राप्त करने हेतु निर्भर रहता है।

दस्ता अध्ययन : इसमें ऐसे लोगों के समूह से सूचना एकत्र करने की आवश्यकता होती है जिनमें किसी विशिष्ट लक्षण या शीलगुण की समानता होती है। इसे जत्था या कोहार्ट अध्ययन भी कहते हैं।

7.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मानव विकास अध्ययन की कौन सी विधि एक ही समूह का अध्ययन लंबे समय तक बार-बार करती है?

   (अ) प्रयोगात्मक विधि (ब) अनुदैर्ध्य विधि

   (स) क्रॉस अनु भागीय विधि (द) जत्था अध्ययन

2. इनमें से कौन अनुदैर्ध्य विधि से अध्ययन का प्रकार नहीं है?

   (अ) पैनल अध्ययन (ब) पूर्व प्रणाली अध्ययन

   (स) समय अध्ययन (द) जत्था अध्ययन

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अरुण कुमार सिंह — मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां
2. वर्मा एवं श्रीवास्तव — बाल मनोविज्ञान: बाल विकास
3. हरलॉक, ई. बी. — विकासात्मक मनोविज्ञान

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव विकास के अध्ययन की विभिन्न विधियों पर संक्षेप में प्रकाश डालें।
2. मानव विकास अध्ययन की अनुदैर्ध्य विधि क्या है? इसकी विशेषताओं एवं सीमाओं को रेखांकित करें।
3. अनुदैर्ध्य विधि एवं क्रॉस अनुभागीय विधि में अंतर बताएं। क्रॉस अनुभागीय विधि की सीमाएं क्या क्या हैं ?
4. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें –

(अ) अनुक्रम अनुसंधान विधि

(ब) विकासात्मक अध्ययन में पद्धतिगत मुद्दे

—---------------: 0 : —---------------

इकाई- 8 भारत में विकासात्मक मनोविज्ञान (Developmental Psychology in India)

संरचना (Structure)

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 विकासात्मक मनोविज्ञान किसे कहते है?

8.4 भारत में विकासात्मक मनोविज्ञान का विकास

8.5 मानव विकास के भारतीय दृष्टिकोण

8.6 मानव विकास के चरणों का भारतीय मॉडल और विकासात्मक कार्य

8.7 सारांश

8.8 शब्दावली

8.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

बहुत पहले से, जाहिर तौर पर सभी संस्कृतियों में, मानव जाति सोचती रही है कि हम कहाँ से आए हैं और हम कहाँ जा रहे हैं। भारतीय संस्कृति में भी यही प्रश्न उठता है और सभी महान सभ्यताओं की तरह, इस विकासात्मक प्रश्न का प्रतिबिंब भी धर्म, दर्शन और पौराणिक कथाओं में शुरू हुआ। भारतीय विकासात्मक मनोविज्ञान देश की तीन प्रमुख परम्पराओं अर्थात् हिंदुत्व, जैन धर्म और बौद्ध धर्म में अन्तर्निहित चेतना, मन और व्यवहार के बारे में ज्ञान का समृद्ध निकाय है, जो हमें अपने प्राचीन चिन्तकों से विरासत में मिला है| चूँकि चेतना की प्रकृति, स्व और मानसिक गतिविधियों से जुड़ी अधिकतर सामग्री इन्हीं परम्पराओं में दी जाने वाली धार्मिक एवम् आध्यात्मिक शिक्षा के एक हिस्से के रूप में पनपी और विकसित हुई है, इसलिए वे या तो धार्मिक समझ ली जाती है या दार्शनिक| भारत में उन विषयों की चर्चा प्रायः धार्मिक प्रवचनों और दार्शनिक बहसों में की जाती है| लेकिन उनका मनोवैज्ञानिक आशय और महत्त्व, दोनों ही सामान्य लोगों, विद्वानों और विशेषज्ञों के लिए अस्पष्ट रहा है|

हमारी परम्पराएं सोने की खानों की तरह है| हर गड्ढे में सोना है लेकिन हमें इसे इसकी अशुद्धियों से अलग कर इसे परिष्कृत करना है|

बिलकुल उसी तरह से, हमें मानव विकास और व्यवहार को बेहतर तरीके से समझने के लिए भारतीय परम्परागत स्रोतों की तह तक जाना होगा| भारतीय विकासात्मक मनोविज्ञान केवल भारतीयों तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह सारी मानवता के लिए है|

8.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप

- विकासात्मक मनोविज्ञान को समझ पायेंगे।
- मानव विकास के भारतीय दृष्टिकोण को जान पाएंगे।
- विकासात्मक मनोविज्ञान का एक स्वदेशी भारतीय ढांचे को जान पाएंगे।
- भारतीय विकासात्मक वर्णन को समझ सकेंगे।
- भारत में विकासात्मक मनोविज्ञान का विकास को समझ सकेंगे।

8.3 विकासात्मक मनोविज्ञान किसे कहते है? (What is Developmental Psychology)

विकासात्मक मनोविज्ञान (Developmental Psychology) एक वैज्ञानिक अध्ययन है जो मनुष्य के जीवन मे हो रहे परिवर्तन के बारे मे बताता है। मूल रूप से यह शिशुओं और बच्चो से संबंध रखता है पर इस क्षेत्र मे किशोरावस्था, वयस्क विकास, उम्र बढ़ने और पूरे जीवनकाल को भी लिया गया है। विकासात्मक मनोविज्ञान के तीन लक्ष्य हैं- विकासात्मकता को वर्णन करना, समझाना और अनुकूलन करना। एरिक एरिक्सन एक प्रभाविक मनोविज्ञानी हैं जिन्होंने मनोसमाजिक विकास के बारे मे अध्ययन किया है। सिगमंड फ्रायड दूसरे प्रसिद्द विकासात्मक मनोविज्ञानी हैं जिन्होंने मनोसामाजिक विकास के बारे मे अध्ययन किया था। मानव जीवन का मनोवैज्ञानिक विकास पर चर्चा करने के लिए एरिक एरिक्सन ने मनोसामाजिक विकास के अपने चरणों का प्रस्ताव दिया। विकासात्मक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की शाखा मानी जाती है।

8.4 भारत में विकासात्मक मनोविज्ञान का विकास (Development of Developmental Psychology in India)

भारतीय दार्शनिक परंपरा इस बात में धनी रही है कि वह मानसिक प्रक्रियाओं तथा मानव चेतना, स्व, मन-शरीर के संबंध तथा अनेक मानसिक प्रकार्य जैसे- संज्ञान, प्रत्यक्षण, भ्रम, अवधान तथा तर्कना आदि पर उनकी झलक के संबंध में केंद्रित रही है। दुर्भाग्य से भारतीय परंपरा की गहरी दार्शनिक जड़ें भारतवर्ष में आधुनिक मनोविज्ञान के विकास को नहीं प्रभावित कर सकी हैं। भारत में इसके विकास

पर पाश्चात्य मनोविज्ञान का भी प्रभुत्व निरंतर बना हुआ है, यद्यपि यहाँ एवं विदेश में भी इसकी एक अलग पहचान के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं और कुछ बिंदु सुनिश्चित किए गए हैं। इन प्रयासों ने वैज्ञानिक अध्ययनों के माध्यम से भारतीय दार्शनिक परंपरा की बहुत सी मान्यताओं की सत्यता स्थापित करने का यत्न किया है।

भारतीय मनोविज्ञान का आधुनिक काल कलकत्ता विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में 1915 में प्रारंभ हुआ जहाँ प्रायोगिक मनोविज्ञान का प्रथम पाठ्यक्रम आरंभ किया गया तथा प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला स्थापित हुई। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 1916 में प्रथम मनोविज्ञान विभाग तथा 1938 में अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान का विभाग प्रारम्भ किया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में आधुनिक प्रायोगिक मनोविज्ञान का प्रारम्भ भारतीय मनोवैज्ञानिक डॉ० एन.एन. सेनगुप्ता, जो वुण्ट की प्रायोगिक परंपरा में अमेरिका में प्रशिक्षण प्राप्त थे, से बहुत प्रभावित था। प्रोफेसर गिरीन्द्रशेखर बोस फ्रायड के मनोविश्लेषण में प्रशिक्षण प्राप्त थे- एक ऐसा क्षेत्र जिसने भारत में मनोविज्ञान के आरंभिक विकास को प्रभावित किया। प्रोफेसर बोस ने 'इंडियन साइकोएनेलिटिकल एसोसिएशन' की स्थापना 1922 में की थी। मैसूर विश्वविद्यालय एवं पटना विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के अध्यापन एवं अनुसंधान के प्रारंभिक केंद्र प्रारंभ हुए। प्रारंभ से मनोविज्ञान भारत में एक सशक्त विद्याशाखा के रूप में विकसित हुआ। मनोविज्ञान अध्यापन, अनुसंधान तथा अनुप्रयोग के अनेक केंद्र हैं। मनोविज्ञान में उत्कृष्टता अथवा वैशिष्ट्य के दो केंद्र उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सहायता प्राप्त हैं। करीब 70 विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान के पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं।

दुर्गानन्द सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'साइकोलॉजी इन ए थर्ड वर्ल्ड कन्ट्री : दि इंडियन एक्सपीरियन्स' (1986 में प्रकाशित) में भारत में सामाजिक विज्ञान के रूप में चार चरणों में आधुनिक मनोविज्ञान के इतिहास को खोजा है। उनके अनुसार, प्रथम चरण स्वतन्त्रता की प्राप्ति तक एक ऐसा चरण था जब प्रयोगात्मक, मनोविश्लेषणात्मक एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण अनुसंधान पर बहुत बल था जिससे पाश्चात्य देशों का मनोविज्ञान के विकास में योगदान परिलक्षित हुआ था। द्वितीय चरण में 1960 तक भारत में मनोविज्ञान की विविध शाखाओं में विस्तार का समय था। इस चरण में भारतीय मनोविज्ञानिकों की इच्छा थी कि भारतीय पहचान के लिए पाश्चात्य मनोविज्ञान को भारतीय संदर्भों से जोड़ा जाए। उन्होंने ऐसा प्रयास पाश्चात्य विचारों द्वारा भारतीय परिस्थितियों को समझने के लिए किया। फिर भी, भारत में मनोविज्ञान 1960 के बाद भारतीय समाज के लिए समस्या-केंद्रित अनुसंधानों द्वारा सार्थक हुआ। मनोवैज्ञानिक भारतीय समाज की समस्याओं के प्रति अधिक ध्यान देने लगे। पुनश्च, अपने सामाजिक संदर्भ में पाश्चात्य मनोविज्ञान पर अतिशय निर्भरता का अनुभव किया जाने लगा। महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिकों ने उस अनुसंधान की सार्थकता पर अधिक बल दिया जो हमारी परिस्थितियों के लिए सार्थक हों।

भारत में मनोविज्ञान की नयी पहचान की खोज के कारण चतुर्थ चरण के रूप में 1970 के अंतिम समय में देशज मनोविज्ञान का उदय हुआ। पाश्चात्य ढाँचे को नकारने के अतिरिक्त भारतीय

मनोवैज्ञानिकों ने एक ऐसी समझ विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से सार्थक ढाँचे पर आधारित हो। इस रुझान की झलक उन प्रयासों में दिखी जिनसे पारंपरिक भारतीय मनोविज्ञान पर आधारित उपागमों का विकास हुआ, जो हमने प्राचीन ग्रन्थों एवं धर्मग्रन्थों से लिए थे। इस प्रकार इस चरण की विशेषता को देशज मनोविज्ञान के विकास, जो भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ से उत्पन्न हुआ था तथा भारतीय मनोविज्ञान एवं समाज के लिए सार्थक था और भारतीय पारंपरिक ज्ञान पर आधारित था, द्वारा जाना जाता है। अब ये विकास सतत रूप से हो रहे हैं। भारत में मनोविज्ञान विश्व में मनोविज्ञान के क्षेत्र में सार्थक योगदान कर रहा है। इसी के साथ हम देखते हैं कि नए अनुसंधान अध्ययन, जिसमें तंत्रिका-जैविक तथा स्वास्थ्य विज्ञान के अन्तरापृष्ठीय स्वरूप समाविष्ट हैं, किए जा रहे हैं।

भारत में मनोविज्ञान का अनुप्रयोग अनेक व्यावसायिक क्षेत्रों में किया जा रहा है। मनोवैज्ञानिक मात्र विशिष्ट समस्याओं वाले बच्चों के साथ ही कार्य नहीं कर रहे हैं, वे चिकित्सालयों में नैदानिक मनोवैज्ञानिक के रूप में नियुक्त हो रहे हैं, मानव संसाधन विकास विभाग एवं विज्ञापन विभागों जैसे कंपनी संगठनों में, खेलकूद निदेशालयों में, विकास क्षेत्र तथा सूचना प्रौद्योगिकी उद्योगों में नियुक्त हो रहे हैं।

8.5 मानव विकास के भारतीय दृष्टिकोण (Indian approach to human development)

भारत एक सांस्कृतिक देश है, जिसमें विभिन्न समाजों, भाषाओं, बोलियों, धर्मों और जीवन शैली के लोग एक साथ रहते हैं। यह एकता एक अनूठी संस्कृति का निर्माण करती है। इस विशिष्टता के बारे में जानने और समझने के बाद, हम भारतीय संदर्भ की कुछ सामान्य रूप से साझा विशेषताओं की पहचान कर सकते हैं। ये विशेषताएं हमें भारतीय संस्कृति के बारे में कुछ मान्यताओं को जानने के लिए प्रेरित करती हैं।

भारतीय संस्कृति का अध्ययन इसे विभिन्न दर्शन, विज्ञान, कला और लोक ज्ञान के एक बॉक्स के रूप में वर्णित करता है। भारत के संदर्भ में मानव विकास की अवधारणा को समझने के लिए हम ज्ञान के कुछ अलग-अलग पूलों की मदद ले सकते हैं। जीवन के दो पहलू: 'पुरुष' और 'प्रकृति'

भारतीय मनोविज्ञान दो सार्वभौमिक तत्वों, 'पुरुष' और 'प्रकृति' को मानव अस्तित्व का आधार मानता है। भारतीय मनोविज्ञान और दर्शन के संबंध में व्यक्तित्व को समझने के लिए इन तत्वों को समझना आवश्यक है। सांख्य दर्शन में पहली बार इन तत्वों की चर्चा की गई है। एक तरफ 'प्रकृति' एक आत्मा है और दूसरी तरफ 'पुरुष' पदार्थ है। सांख्य दर्शन का मानना है कि 'प्रकृति' के बिना इस दुनिया में किसी भी तत्व या पदार्थ की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। ये प्राकृतिक शक्तियां हैं जो दुनिया के हर पदार्थ को आकार देती हैं। चूँकि यह किसी पदार्थ से नहीं बना है, इसलिए यह किसी पर निर्भर नहीं है। भारतीय दर्शन इसे एक स्वतंत्र, सार्वभौमिक, अनंत और आत्मनिर्भर ऊर्जा के रूप में देखता है। अंकशास्त्र भी पुरुष की अवधारणा की एक विस्तृत व्याख्या प्रदान करता है, जो इसलिए इसे एक चेतना और एक

संवाहक के रूप में देखता है। यहां यह समझना भी बहुत जरूरी है कि यहां 'पुरुष' का मतलब मर्दानगी बिल्कुल नहीं है, बल्कि यह मन, बुद्धि और अहंकार के सभी प्रभावों से स्वतंत्र है। चेतना 'पुरुष' और 'प्रकृति' दोनों में मौजूद है, लेकिन पुरुष चेतना में सक्रिय रूप में मौजूद है जबकि प्रकृति में यह चेतना निष्क्रिय अवस्था में मौजूद है। पुरुष और प्रकृति दोनों परस्पर क्रिया के माध्यम से दुनिया में जीवन के सभी आयामों का निर्माण करते हैं। बुद्धि, अहंकार, मन और इन्द्रियाँ सभी इसी अंतःक्रिया से उत्पन्न हुए हैं और ये तत्व व्यक्ति के उद्भव का आधार बनते हैं। चूँकि चेतना इस अंतःक्रिया की पूर्व-शर्त है, इसलिए यह मुक्त भी है। व्यक्ति के जीवन में चेतना हमेशा समन्वयक और ऊर्जा के रूप में मौजूद रहती है। चेतना की गुणवत्ता व्यक्ति में पुरुष और प्रकृति के बीच बातचीत से उत्पन्न होती है। इन सभी प्रक्रियाओं और अंतःक्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति का उद्भव और विकास संभव हो जाता है। भारतीय दर्शन पश्चिमी दर्शन से अलग व्यक्तित्व को समझने की कोशिश करता है। इसकी कई परतों की बात करता है। पंचकोश की पांच परतों या स्तरों का सिद्धांत व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करता है। इन पांच परतों से परिचित होने से हमें पंचकोश दृष्टिकोण को समझने में मदद मिलती है।

पंचकोश दृष्टिकोण -:

भारतीय दर्शन और मनोविज्ञान व्यक्ति की प्रकृति और उसके विकास को समझने और समझाने के लिए विभिन्न अवधारणाओं का समर्थन करते हैं, जिनमें से पंचकोश दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। यह अवधारणा पांच कोशों के सिद्धांत पर आधारित है, जो विकास के पांच अलग-अलग चरणों का वर्णन करती है। इन चरणों में एक व्यक्ति बाहरी दुनिया से आंतरिक स्व की ओर बढ़ता है। हम इसे व्यक्ति की स्वयं की तरफ यात्रा कह सकते हैं। इस यात्रा में व्यक्ति न केवल अपनी भौतिक प्रकृति को जानता है, बल्कि अपनी आध्यात्मिक चेतना और मनोवैज्ञानिक प्रकृति को भी जानता है। जानने की प्रक्रिया में, इसमें स्वयं की नई संभावनाओं और आयामों की खोज और समझ शामिल है। दूसरे शब्दों में, पंचकोश के माध्यम से पाँच स्तर हैं, जिसे हम अपनी भौतिक अवस्था से अपने अचेतन मन में ले जाते हैं। प्रत्येक कोष की अपनी विशेष विशेषताएं होती हैं जो मनुष्य के विचारों, भावनाओं, कर्मों, इच्छाओं आदि को नियंत्रित और निर्देशित करती हैं।

पंचकोश सिद्धांत व्यक्ति के अस्तित्व के भौतिक और आध्यात्मिक स्तरों का गहन अध्ययन है। यह किसी के शरीर और मन की संरचना, उन पर आधारित क्रियाओं को समझने में मदद करता है और उन्हें कैसे नियंत्रित किया जा सकता है। पंचकोश का ज्ञान योग के कुशल और सार्थक अभ्यास का आधार है। चूंकि यह व्यक्ति की उत्पत्ति, गठन और नियंत्रण की बात करता है, इसलिए यह प्रकृति में बहुआयामी भी है। पंचकोश के पाँच स्तर निम्नलिखित हैं:

- अन्नमय कोष:
- प्राणमय कोष:
- मनोमय कोष:

- विज्ञानमय कोष:
- आनंदमय कोष:

अन्नमय कोष:

यह एक भौतिक कोष है। यह स्थूल है और प्रकृति में प्रकट होता है। यह कोष मानव अस्तित्व का मूल कोष है। चूंकि इस कोष से ही शरीर को पोषण और ऊर्जा मिलती है, इसलिए यह सभी के बीच बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। यह किसी व्यक्ति के अस्तित्व की सबसे भौतिक प्रस्तुति है। चूँकि यह बाह्य क्रम (परत) में पहला कोष है, दार्शनिक भी इसे बाह्य कोष के रूप में परिभाषित करते हैं। यह कोष भोजन से संचालित होता है। सभी कोषों की तुलना में, यह अत्यधिक भौतिक है। कुछ दार्शनिक इसे पांच महाभूतों की रचना भी कहते हैं। पांच महाभूत वे पांच तत्व हैं जिनसे शरीर का निर्माण होता है। ये पांच महाशक्तियां हैं-आकाश, वायु, जल, अग्नि और मिट्टी।

प्राणमय कोष:

प्राणमय कोष प्राणशक्ति है। यह जीवन की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। यह कोष तन और मन दोनों को एक साथ जोड़ने के सिद्धांत पर कार्य करता है। इस दर्शन में श्वास को उसकी भौतिक अभिव्यक्ति माना गया है, उसका अभाव जीवन का अभाव है। सरल शब्दों में वायु इस कोष का मुख्य तत्व है। यह समस्त कोष वायु द्वारा संचालित होता है। इसमें सांस लेने और शरीर के अंदर हर कोशिका को भेजने की प्रक्रिया शामिल है। अन्नमय कोष और प्राणमय कोष मिलकर जीव के भौतिक शरीर का संचालन करते हैं। प्राणमय कोष के कार्य को प्रायः पाँच भागों में विभाजित किया जाता है, इन्हें पंच प्राण कहा जाता है। पंच प्राण के ये पांच अंग हैं प्राण, अपान, सामन, उड़ान और व्यान। प्राण की स्थिति श्वसन पथ और गले के बीच कहीं होती है। अपान की स्थिति नाभि के पास होती है जो आंत, गुर्दे आदि से संबंधित होती है। हम समान को पाचन से जोड़ सकते हैं। उड़ान आंख, नाक, कण आदि से संबंधित है। व्यान एक प्रकार की जीवन शक्ति है जो सभी शारीरिक गतिविधियों को नियंत्रित करती है।

मनोमय कोष

मनोमय का अर्थ है मानस की अभिव्यक्ति। व्यक्ति की इच्छाएं, विचार और अनुभव इस कोष के प्रमुख तत्व हैं। मन शरीर के पांच अंगों अर्थात जीभ, नाक, आंख, कान और त्वचा के साथ मिलकर मनोमय कोष का निर्माण करता है। इस कोष में द्वैत, विविधता और विभेद सामान्य घटनाएँ हैं। यह बाहरी दुनिया से प्राप्त सभी संदेशों को स्वीकार करता है। यह न केवल संदेश प्राप्त करता है बल्कि उनका विश्लेषण भी करता है। विश्लेषण का उद्देश्य अच्छे बुरे, सही गलत आदि का निर्धारण करना है। यह अन्नमय कोश और प्राणमय कोश को भी काफी हद तक नियंत्रित करता है, इसलिए हम इसे मानव अस्तित्व का एक बुनियादी (मौलिक) कोश मान सकते हैं। इस कोश को सबसे चंचल कोश भी कहा

जाता है। इस पर नियंत्रण करना एक कठिन कार्य है। मन के चार मुख्य रूप हैं, श्वाइवायस मन, सत्त्व मन, सर्वेंद्रिय मन और इंद्रिय मन।

विज्ञानमय कोष

इसे ज्ञान कोष भी कहते हैं। यह एक व्यक्ति में ज्ञान और बुद्धि की अभिव्यक्ति है। इस परत की प्राथमिक विशेषता संवेदी अंगों के साथ बातचीत करना है। संवेदी अंग व्यक्ति को देखने, सुनने, सूंघने, चखने और छूने आदि की क्रियाओं को करने में मदद करते हैं। यह कोश ज्ञान और बुद्धि का प्रतिनिधि है, लेकिन अस्थायी और अस्थिर प्रकृति के कारण यह अन्य कोशों के बीच उच्च स्तर पर नहीं है। इस कोष की कार्य प्रकृति अचेतन मन और सूचनाओं के संचायक की है। यह कोष व्यक्ति के विचारों और व्यवहार को तर्कसंगतता और बुद्धिमत्ता प्रदान करता है। यह ध्यान की गहनतम अवस्था में सबसे अधिक सक्रिय होता है। इस अवस्था में यह स्थायित्व प्राप्त करता है और मन को शांत और आरामदायक बनाता है। भारतीय दर्शन के अनुसार, विज्ञानमय कोष पांच ज्ञान इंद्रियों और बुद्धि से बना है।

आनंदमय कोष

यह व्यक्ति की सबसे भीतरी परत होती है। इसकी जड़ इतनी गहरी है कि यह आत्मा के करीब पहुंच जाती है। यह व्यक्ति में आनंद की उच्चतम अवस्था है। यहाँ भोग का अर्थ शारीरिक या मनोवैज्ञानिक आनंद से नहीं है, लेकिन यहाँ भोग का अर्थ आध्यात्मिक आनंद के प्रकार से है। यह कोष आत्मा की तीन प्रमुख विशेषताओं चित्त, सत्त और आनंद की अभिव्यक्ति है। इस कोष का संबंध परम सत्य से है। इस कोष का कार्य क्षेत्र केवल नींद और समाधि में ही शुरू हो सकता है। योग इस कोष को जगाने के कई उपाय सुझाता है, जिससे व्यक्ति ध्यान और समाधि की अंतिम अवस्था तक पहुंच सके। तैत्तिरीय उपनिषद में इस कोष का उल्लेख इस प्रकार है।

"तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात| अन्योंतर आत्मानंदमय:|

तेनैष पूर्ण:| स वा एष पुरुषविध एव |

तस्य पुरुषविधताम| अन्वय पुरुषविध:|

तस्य प्रियमेव शिर:| मोदो दक्षिण: पक्ष:|

प्रमोद उत्तर: पक्ष:| आनन्द आत्मा | ब्रह्म पुच्छ प्रतिष्ठा|"

यह सूत्र विभिन्न आभूषणों के साथ आनंदमय कोष के महत्व की व्याख्या करता है। इसके अनुसार आनंदमय खोल विज्ञानमय जीवात्मा का आंतरिक ब्रह्म है। यह सूत्र आनंदमय कोष की तुलना एक पक्षी से करता है, जिसका सिर प्रियभव है, और दो पंख मोद और प्रमोद हैं। इस सूत्र में आनंदमय कोश को ईश्वर का मध्य भाग माना गया है और ब्रह्मा को इसकी पूंछ माना गया है। दूसरे और सरल शब्दों में,

तैत्तिरीय उपनिषद का यह सूत्र आनंदमय कोश को जीवात्मा के सबसे महत्वपूर्ण पहलू के रूप में परिभाषित करता है। यह सूत्र मोद, प्रमोद, प्रियभव आदि को आनंदमय कोष के विभिन्न आयामों के रूप में प्रस्तुत करता है। यह सूत्र आत्मा और ईश्वर के बीच के संबंध में आनंदमय सौरस को भी स्थान देता है। चूंकि आनंदमय खोल अंतरतम खोल है, इसलिए इसे जगाना या सक्रिय करना एक जटिल कार्य है, लेकिन एक बार जब कोई व्यक्ति इस अवस्था में पहुंच जाता है, तो वह दुनिया की सभी भौतिकता से ऊपर उठ जाता है और परम परमानंद की स्थिति तक पहुंच जाता है।

भारतीय संदर्भ में मानव विकास को भी चार मुख्य चरणों के माध्यम से समझा गया है। इन चार चरणों में मानव जीवन की संपूर्ण यात्रा को सीमित करने का प्रयास किया गया है। ये चार चरण मानव जीवन के मनोसामाजिक पहलुओं को केंद्र में रखते हैं और मानव जीवन को व्यापक दृष्टिकोण से देखते हैं। हम इन चार चरणों को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के रूप में जानते और समझते हैं। भारतीय दर्शन और मनोविज्ञान भी इन चार चरणों को आध्यात्मिक महत्व और प्रासंगिकता की दृष्टि से देखने का प्रयास करता है। इन चरणों के बारे में जानने के लिए, हमें इन चरणों की अवधारणाओं और विशेषताओं को जानना होगा।

ब्रह्मचर्य- इस चरण को सीखने और प्रशिक्षण के चरण के रूप में माना जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति शिक्षार्थी के रूप में रहता है। चूँकि यह अवस्था मानव जीवन का प्रारंभिक चरण है, इसलिए व्यक्ति विभिन्न आवश्यक जीवन कौशल सीखता है। इस स्तर पर व्यक्ति न केवल ज्ञान और कौशल प्राप्त करता है, बल्कि जीवन के व्यावहारिक पहलुओं को भी सीखता है। यह अवस्था बचपन से शुरू होकर किशोरावस्था के अंतिम वर्षों तक समाप्त होती है। इस चरण को सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक दुनिया का एक कुशल सदस्य बनने के लिए, जीवन की तैयारी के लिए प्रशिक्षण के एक चरण के रूप में भी देखा गया है।

गृहस्थ- यह अवस्था यौवन की प्रारंभिक अवधि से शुरू होती है और मध्य वयस्कता तक जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करता है और पारिवारिक जीवन के केंद्र में रहता है। विवाह, प्रजनन और परिवार इस अवस्था के मूल हैं। पारिवारिक जीवन के माध्यम से व्यक्ति अपने विभिन्न सामाजिक दायित्वों और समाज की अपेक्षाओं को पूरा करता है। इस स्तर पर व्यक्ति से अपने परिवार की सभी जिम्मेदारियों को पूरा करने और समाज में सद्भाव स्थापित करने की अपेक्षा की जाती है।

वानप्रस्थ- एक व्यक्ति इस चरण में वयस्कता जीने के बाद और जब व्यक्ति ने सभी पारिवारिक जिम्मेदारियों को पूरा किया। इस अवस्था में व्यक्ति को अत्यधिक अनुशासित जीवन शैली अपनानी होती है और सभी विलासिता से दूरी बनाए रखनी होती है। इस चरण को संन्यास चरण की तैयारी के रूप में भी देखा जा सकता है। इस अवस्था में एक व्यक्ति सामाजिक जीवन से दूर रहना सीखता है और न्यूनतम आवश्यकताओं के साथ जीना सीखता है और अपनी दैनिक आवश्यकताओं को सीमित और नियंत्रित करने का अभ्यास करता है।

संन्यास- यह अवस्था व्यक्ति के जीवन की अंतिम अवस्था होती है। इस अवस्था में व्यक्ति पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संबंधों से पूरी तरह से अलग हो जाता है। इस अवस्था को वैराग्य की अवस्था के रूप में भी देखा जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति दुःख, सुख, प्रेम, द्वेष और लाभ की भावनाओं के प्रति निरपेक्ष और उदासीन हो जाता है। एक व्यक्ति आध्यात्मिकता और दर्शन की ओर बढ़ता है और इस चरण में सभी प्रकार के स्वार्थ और विलासिता को त्याग देता है। इस चरण के अंतिम चरण में व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार यानी मोक्ष की प्राप्ति होती है।

बौद्ध दर्शन ने मानव विकास के संबंध में कुछ व्याख्याएं भी प्रस्तुत की हैं, जिनकी चर्चा नीचे संक्षेप में की गई है।

कर्म की अवधारणा- बौद्ध धर्म का मूल तत्व इसकी कर्म की अवधारणा है और यह दर्शन मानता है कि कर्म का संबंध संपूर्ण मानव विकास से है। एक व्यक्ति जिस तरह का आचरण करता है उसका प्रभाव उसके पूरे जीवन पर पड़ता है। जीवन के बौद्ध दर्शन की दृष्टि में व्यक्ति का जीवन चक्र मृत्यु के बाद भी जारी रहता है और व्यक्ति द्वारा किया गया कार्य उसका भविष्य निर्धारित करता है।

चार जीवन सत्य

बौद्ध दर्शन ने चार जीवन सत्यों के माध्यम से मानव विकास को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इन चार जीवन सत्यों को हम नीचे दिए गए बिंदुओं की सहायता से समझ सकते हैं:

1. दुःख (संसार में दुःख है)-बौद्ध दर्शन मानता है कि यह संसार विभिन्न प्रकार के दुखों से भरा है। जन्म, बुढ़ापा, बीमारी, अपनों से बिछड़ना और अधूरी इच्छाएं सब दुख हैं।
2. समुदय (दुख का कारण)- दुःख का कारण भोग, विलास, द्वेष, तृष्णा, लोभ आदि है। जब भी किसी व्यक्ति का जीवन इन दुखों से नियंत्रित होता है, तो वह दुःख और दुख का कारण बनता है। दुख का कारण व्यक्ति के भीतर है।
3. निरोध (दुःख निवारण)- जब कोई व्यक्ति दुःख के कारणों से अवगत हो जाता है, तो वह इससे छुटकारा पाने का प्रयास कर सकता है। आत्म-नियंत्रण इस क्रिया या प्रक्रिया को सहायता और निर्देशित करता है।
4. मार्ग (दुःख दूर करने के उपाय)-बौद्ध दर्शन ने इस दुख से मुक्ति के आठ उपाय बताए हैं, इसे अष्टांग कहा जाता है, ये अष्टांगमार्ग इस प्रकार हैं-

सम्यक दृष्टि- इस मार्ग (पथ) के अनुसार व्यक्ति को चार सत्यों में विश्वास करना चाहिए; हिंसा न करना, चोरी न करना और व्यभिचार न करना।

सम्यक संकल्प- नकारात्मक या दुर्भावनापूर्ण न सोचने का संकल्प लें, बल्कि जीवन में करुणा, मित्रता, सद्भाव और समानता रखने का संकल्प लें। धम्म के मार्ग पर चलने का संकल्प भी है।

सम्यक वाक्- इस मार्ग के अनुसार सत्य बोलने का अभ्यास करना चाहिए और अपनी अभिव्यक्ति में मधुरता धारण करनी चाहिए।

सम्यक कर्म - इस मार्ग के तहत व्यक्ति को अन्य प्राणियों के जीवन की रक्षा करनी चाहिए और सत्य और न्याय के अनुसार कार्य करना चाहिए।

सम्यक जीविका- यह मार्ग निर्देश देता है कि व्यक्ति को अपनी जीविका कमाने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए। यह मार्ग यह भी निर्देश देता है कि एक व्यक्ति को हथियारों, जानवरों, मांस, शराब और शराब के व्यापार को प्रतिबंधित करना चाहिए।

सम्यक प्रयास- अष्टांग मार्ग का अनुसरण करने का प्रयास करना चाहिए और अपने मन में हिंसा, विध्वंसक और झूठ के विचार नहीं रखने चाहिए।

सम्यक स्मृति- इस मार्ग के अंतर्गत स्वयं को जानने की दृष्टि विकसित करनी चाहिए। त्रुटियों, दोषों और पापों को स्वीकार करते हुए उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

सम्यक समाधि- यह वह अवस्था है जब किसी व्यक्ति का मन उपरोक्त सात मार्ग (पथ) के अभ्यास से स्थिर और शांत हो जाता है। इस स्तर पर, कोई भी प्रचार, बुरे विचार या लालच व्यक्ति की शांति और स्थिरता को भंग नहीं कर सकते।

बौद्ध दर्शन कर्म के सिद्धांत और अष्टांग मार्ग को मानव विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण मानता है क्योंकि यह व्यक्ति को जीवन के विभिन्न दुखों से छुटकारा पाने में मदद करता है। चूंकि, बौद्ध दर्शन जीवन को एक चक्र के रूप में मानता है, यह मानव विकास को कुछ चरणों में विभाजित करके प्रतिनिधित्व नहीं करता है, लेकिन यह व्यक्ति को अपना जीवन जीने के लिए एक दिशा प्रदान करता है। इन दिशाओं की सहायता से व्यक्ति अपने विकास का निर्धारण कर सकता है।

8.6 मानव विकास के चरणों का भारतीय मॉडल और विकासात्मक कार्य (Indian model of stages of human development and developmental work)

भारतीय प्रणाली में विकास के मनोवैज्ञानिक चरण और विकास कार्यों के प्रत्येक चरण में मानव विकास अच्छी तरह से वर्णित है। विकास परिवार, समाज और संस्कृति के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। जीवन चक्र के विकास के चरण को आश्रमधारणा के रूप में जाना जाता है। शिशु के विकास की प्रक्रिया में जो उम्मीदें अथवा विकासात्मक कार्य या सिद्धांत विकास या वृद्धि में शामिल होते है वह प्रकृति में बहुत अधिक मनोसामाजिक होते है। जीवन के प्रत्येक चरण के कुछ विशेष कार्य होते है जिनका अपने चरण में पूर्ण होना विकास की निरंतर प्रगति के लिए आवश्यक है। मानव विकास की इस प्रक्रिया में, धर्म एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धर्म व्यक्तिगत क्रिया का सिद्धांत है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन कार्यों को पूरा करके मानव जीवन के वांछित लक्ष्य तक पहुँचता है। यह जीवन के

विभिन्न चरणों के कार्य तथा उन चरणों को किस तरह जीना चाहिये उन्हें परिभाषित करता है। जीवन चक्र का भारतीय मॉडल या विकास के चरण (आश्रमधर्म) में मानव विकास की कल्पना करता है और प्रत्येक क्रमिक चरण में जीवन के कुछ निर्दिष्ट कार्य पूर्ण होते है। फ्रायडियन और एरिकसन के मानव विकास के मॉडल में मानसिक स्वास्थ्य भी शामिल है। जबकि भारतीय मॉडल और ईस्टर्न विकासात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तावित मॉडल ने बच्चे के व्यवस्थित विकास और अनुकूलन पर मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के संकेत पर ध्यान केंद्रित किया है। भारतीय मॉडल आदर्शवादी प्रकृति और मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य प्राप्त करने के उद्देश्य से जीवन कार्यों की पूर्ति है।

जीवन और विकास चरण के कार्य -: जीवन के चरण और विशेष चरण के लिए निर्दिष्ट विशिष्ट टास्क विकासात्मक मनोवैज्ञानिक द्वारा विकास कार्य के साथ तुलना में नीचे दिए गए हैं:-

मानव विकास के भारतीय मॉडल के चरण और जीवन कार्य की तुलना "पश्चिमी प्रणाली" के साथ

भारतीय मॉडल		एरिक्सन का मॉडल	पश्चिमी विकास सिद्धांत
विकासात्मक अवस्था	विकासात्मक कार्य	विकासात्मक कार्य	विकासात्मक कार्य
शैशवावस्था (0 – 6 माह)	मातृ-शिशु सहजीव	बुनियादी भरोसा बनाम संदेह	भावनात्मक विकास, विश्वास, और लगाव
बाल्यावस्था (6 माह- 2 वर्ष)	धीरे-धीरे दूध छुड़ाना	स्वायत्तता बनाम शर्म	ठोस पदार्थ लेना, संचार को समझना, शौचालय नियंत्रण सीखना, आत्म जागरूकता।
बचपन (2 से 5 वर्ष)	निर्भरता, लगाव और समाजीकरण	पहल बनाम अपराध	समाजीकरण, परिपक्वता और माता-पिता और समुदाय से स्वतंत्रता, संचार कौशल प्राप्त करना।
किशोरावस्था (कुमारा) (5 से 15 वर्ष)	स्वतंत्रता, हीनता, योग्यता, सामाजिक, संबद्धता का विकास। प्राथमिक कार्य है शिक्षा, धर्म का ज्ञान ब्रह्मचर्य के माध्यम से	उद्योग बनाम हीनता, पहचान बनाम पहचान प्रसार।	स्वयं की स्वीकृति। भावुक हो जाना, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, पारस्परिक विकास करना और शैक्षिक कौशल,

			आत्म-नियंत्रण और आगे बढ़ना शिशु और यौवन संबंधी प्रतिक्रियाएं। पहचान गठन।
प्रारंभिक और मध्य वयस्कता (गृहस्थ)	परिवार का उत्तरदायित्व (गृहस्थ) लेना, संतानों और बड़ों का कल्याण और देखभाल करना।	अंतरंगता बनाम एकांत।	अन्योन्याश्रितता और जिम्मेदारी प्राप्त करना, घर की स्थापना वैवाहिक समायोजन और पितृत्व-सहायता के लिए समायोजन और बच्चों का विकास
वयस्कता (वानप्रस्थ)	आत्म-साक्षात्कार की तलाश, धर्म का प्रचार, आध्यात्मिक खोज। (वानप्रस्थ)	रचनात्मक बनाम ठहराव	परिवार में समायोजन परिवर्तन, सामाजिक-सांस्कृतिकऔर बड़े पैमाने पर दुनिया; सामाजिक, धार्मिक और नागरिक गतिविधियां की तैयारी।
बुढ़ापा, त्याग (संन्यास)	आध्यात्मिक खोज द्वारा परम वास्तविकता को साकार करने के लिए संन्यास लेना मोकेहा या यूनिवर्सल के साथ मिलन के अंतिम उद्देश्य के साथ स्वयं (परम वास्तविकता)।	ईमानदारी बनाम निराशा	आत्म सम्मान के रखरखाव के माध्यम से एकीकरण, के साथ चिंता मूल्य और धर्म, जीवन में प्रणोद, अर्थ, और संतुष्टि।

शैशवावस्था और प्रारंभिक बचपन: भारतीय प्रणाली की अवधारणा है कि मानव विकास चरणों की श्रृंखला में प्रकट होता है। जीवन के प्रत्येक चरण को विशेष जीवन कार्यों के रूप में देखा जाता है। यह निश्चित क्रम में प्रगति के लिए जीवन के चरणों की अवधारणा भी करता है, और जीवन के चरणों की प्रगति को आयुर्वेद में चित्रित किया गया है। आयुर्वेद विस्तार से विकास और बाल पालन प्रथाओं, और जीवन के प्रत्येक चरण से जुड़े अनुष्ठानों का वर्णन करता है जो जीवन के एक चरण से दूसरे चरण में संक्रमण को चिह्नित करते हैं। उनका अभ्यास क्रमिक समाज में बच्चे का एकीकरण के उद्देश्य से किया जाता है। बच्चे को प्रतिगामी प्रवृत्तियों, माता-पिता से अलग होने के डर और असुरक्षा की भावना से बाहर आने में भी मदद मिलती है। इस प्रक्रिया में परिवार, रिश्तेदारों और शुभचिंतकों की पूरे दिल से भागीदारी से ठहराव या प्रतिगमन को दूर करने और बच्चे के क्रमिक एकीकरण को समाज में व्यापक बनाने में मदद मिलती है। बच्चे में आत्मविश्वास का संचार होता है, बच्चे को प्रोत्साहित किया जाता है और स्वीकार किया जाता है। वांछित और स्वीकृत होने की भावना बच्चे को उचित आत्म-अवधारणा, पहचान और सुरक्षा भावनाओं को विकसित करने में मदद करती है।

नामकरण समारोह, ठोस भोजन का परिचय और वयस्क पोशाक के लघु रूप के साथ बच्चे को पहनने से व्यक्तित्व विकसित करने में मदद मिलती है, माँ से अलगाव सहज और क्रमिक तरीके से होता है। बच्चे को तानना और उसे बनाने के लिए बच्चे को एक वयस्क की तरह कपड़े पहनाना एक लघु वयस्क के रूप में प्रकट होना माँ-बच्चे के बंधन के अंत का प्रतीक है, बच्चे को समाजीकरण के लिए तैयार करता है और व्यापक बाहरी दुनिया में कदम रखता है। बच्चे को स्कूल में रखना, सीखने की उम्मीद करना, स्कूल की स्थिति को अपनाना, माता-पिता से अधिक समय तक दूर रहना, समाजीकरण और बच्चे को अधिक स्वतंत्र बनाने में महत्वपूर्ण कदम हैं।

बाल पालन अभ्यास:- भारतीय परंपरा में, वैश्विक विकास को बहुत महत्व दिया जाता है, अर्थात, बाल विकास के शारीरिक, भावनात्मक और सामाजिक पहलुओं को। यह एक समग्र दृष्टिकोण है। आयुर्वेदिक साहित्य में शिशुओं और बच्चों की देखभाल के बारे में विस्तृत निर्देश हैं। माता-पिता को निर्देश दिया जाता है कि बच्चों को दानव के बारे में कहानियां सुनाकर धमकी नहीं दी जानी चाहिए, उन्हें अचानक नहीं जगाना चाहिएचिढ़ाना नहीं चाहिए और उनकी देखभाल और जरूरतों को पूरा करके हर समय खुश रखना चाहिए। इस पहलू को मानव विकास के आधुनिक मनोविज्ञान में अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है। माता-पिता के साथ बच्चों का संबंध एक निष्क्रिय रवैया है (यह निर्भरता और अति संरक्षण को प्रस्तुत करने और प्रोत्साहित करने का एक दृष्टिकोण है)। भारतीय साहित्य में, बच्चे को सकारात्मक रूप से चित्रित किया जाता है, पूरी तरह से स्वीकार किया जाता है और गर्मजोशी और स्नेह के साथ उसकी देखभाल की जाती है। दरअसल और बच्चे को भगवान के बराबर या करीब माना जाता है। समाजीकरण और आदत प्रशिक्षण में कम दबाव और तात्कालिकता है। बच्चे के पालन-पोषण की प्रथा एक लंबी अवधि के लिए स्नेहपूर्ण भोग में से एक है और इस विधि को बाल-केंद्रित अभ्यास कहा जा सकता है। यह माँ के साथ गहरे लगाव की विशेषता है और सामान्य परंपरा में 3 से 5 साल तक लंबी होती है। इस अवधि के दौरान अलगाव, व्यक्तित्व, स्वायत्तता, पहल और स्वयं के विकास के

विकासात्मक कार्य आकार लेते हैं। इस लंबी शैशवावस्था के दौरान बच्चा माँ के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा होता है। यह पश्चिमी प्रथा के विपरीत है जहां दूध छुड़ाना और अनुशासित करना काफी पहले होता है। कोई कह सकता है कि यह बच्चे को भावनात्मक संकट की कीमत पर है। संयुक्त परिवार प्रणाली में बच्चे को स्थानापन्न माताओं (दादी माताओं, चाची आदि) का लाभ मिलता है, बच्चे को ज्यादातर समय पकड़ कर रखा जाता है, गले लगाया जाता है और बात की जाती है। भारतीय परिवार प्रणाली में घर पर वैकल्पिक माताओं की उपलब्धता से मां से संक्षिप्त अलगाव के कारण शिशु की चिंता आसानी से कम हो जाती है। शिशुओं द्वारा प्राप्त अंतरंग संपर्क और पारंपरिक भारतीय परिवारों में प्राप्त पोषण की भावनात्मक गर्मजोशी बच्चे की शारीरिक और भावनात्मक जरूरतों को पूरा करती है। शिशु के कार्य करने के लिए तैयार होने के समय से आगे माताएं इस तरह की मातृत्व का विस्तार करती हैं। पारंपरिक परिवारों में मां से अपेक्षा की जाती है कि वह यथासंभव लंबे समय तक स्तनपान जारी रखे। इस संदर्भ में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि कुछ पश्चिमी लोगों ने संयुक्त परिवार प्रणाली और लंबे समय तक शैशवावस्था को बच्चों में स्वायत्तता और स्वतंत्रता के विकास में बाधक माना है।

शौचालय प्रशिक्षण में सहनशीलता-: दूध छुड़ाना, शौचालय प्रशिक्षण का आग्रह या थोपना नहीं है बल्कि ये प्रक्रियाएं अपनी गति से होता है। यह बच्चे के पालन-पोषण अभ्यास में एक स्नेही सहनशीलता है। दूध पिलाना अक्सर होता है, और यह धीरे-धीरे समाप्त होता है, और शौचालय प्रशिक्षण के लिए मजबूर नहीं किया जाता है। इसलिए, फ्रायड द्वारा प्रस्तावित कुछ अवधारणाओं के संबंध में शौचालय प्रशिक्षण की समस्याओं और व्यक्तित्व विकास पर उनके दुष्प्रभाव (व्यक्तित्व की विशेषताएं और शौचालय प्रशिक्षण के दुष्परिणाम) भारतीय संदर्भ में लागू नहीं हैं।

ध्यान केंद्रित करने में बदलाव-: मानव विकास की प्रक्रियाओं में, धार्मिक आदर्शों, परंपराओं और सामाजिक संस्थाओं की भारतीय सामाजिक वास्तविकताओं की विशिष्ट ताकतें विकास में भारतीय बच्चों के लिए विशिष्ट रूप से परस्पर क्रिया करती हैं। उदाहरण पुनीथा (1982) के अध्ययन में देखा जा सकता है जहां व्यवहार के विकास के संबंध में भोजन, दूध छुड़ाने और शौचालय प्रशिक्षण का अध्ययन करने के बजाय, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, व्यावसायिक स्थिति और परिवार की स्थापना का अध्ययन किया गया था। काकर (1981) लिखते हैं कि सांस्कृतिक, धार्मिक और विकास के सूत्र एक साथ बुने जाते हैं, जो माँ में सचेत दृष्टिकोण और अचेतन छवियों के निर्माण में होते हैं जो भारतीय शिशु को उसकी विशेष आभा और विकासात्मक प्रभाव देते हैं। कक्कड़ कहते हैं कि एक भारतीय शैशवावस्था से बचपन में यह मानते हुए उभरता है कि दुनिया भीख मांग रही है और दूसरों को गिना जा सकता है इस विश्वास में कार्य करने के लिए। इसलिए, शिशु के पास एक सुरक्षित आधार होता है और वह आत्मविश्वास के साथ दुनिया का सामना करता है। पारिवारिक बंधन अपनेपन की भावना को बढ़ावा देते हैं, जो सभी सामाजिक संबंधों के लिए सबसे अधिक फायदेमंद है। 1970 के दशक के दौरान विकासात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने की महत्वपूर्ण विशेषता धीरे-धीरे फ्रायडियन मॉडल को अलग करना और सामाजिक शिक्षण मॉडल (आनंदलक्ष्मी 1975, lQ8O) को स्वीकार करना है।

इसलिए, सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव को मान्यता दी गई है और भारत में बाल विकास के अध्ययन में सामाजिक शिक्षण मॉडल को महत्व दिया गया है।

भारतीय मॉडल की कमियां सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वास प्रणाली के कारण निर्भरता, लंबे समय तक बचपन और महिला बच्चों की सापेक्ष अस्वीकृति को प्रोत्साहित कर रही हैं जिससे पुरुष बच्चों को अधिक महत्व दिया जा रहा है। कन्याओं की सापेक्ष अस्वीकृति का प्रभाव भारतीय महिलाओं को नुकसान पहुंचाया है।

बाल पालन अभ्यास : पूर्व' और पश्चिम'

भारतीय परंपरा में समाज में बच्चे के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक है। बच्चे के पालन-पोषण की प्रथा बाल-केंद्रितता में से एक है। बचपन में अनुशासन और आदत प्रशिक्षण के दौरान सख्ती से लागू नहीं किया जाता है। समाजीकरण धीरे-धीरे होता है और कुछ प्रथाओं का पालन किया जाता है और बच्चों को विकास कार्यों को सुचारू रूप से करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। माता-पिता का रिश्ता आपसी प्यार और स्नेह प्राप्त करने वाला सुख है। यह बुनियादी विश्वास, सुरक्षा की भावना के विकास की सुविधा प्रदान करता है और स्वस्थ विकास को बढ़ाता है। बचपन के दौरान माता-पिता पर लंबे समय तक निर्भरता को सहन किया जाता है और कुछ हद तक प्रोत्साहित किया जाता है। मिंटम, हल्टचेकॉक 1966, सिन्हा 1982, रंगसवर्ड 1991)। हालाँकि, भारत में, इसका संक्रमण कुछ पारंपरिक प्रथाओं को तोड़ रहा है।

बच्चे के पालन-पोषण में भारतीय परंपरा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता स्नेही सहनशीलता, स्वीकृति और लंबे समय तक शैशवावस्था है। यह शौचालय प्रशिक्षण के दौरान बच्चे को स्वीकार या अस्वीकार करने के पश्चिमी माता-पिता के दृष्टिकोण के विपरीत है, प्रारंभिक अनुशासन, आदत प्रशिक्षण और स्वतंत्रता के विकास पर जोर (नेकी 1979)। पश्चिम में अनुशासन का अभ्यास शुरू से ही किया जाता है जो कि बच्चे के पालन-पोषण की भारतीय परंपरा से काफी अलग है। अनुशासन और लापरवाही का रवैया विद्रोह को जन्म देता है।

भारतीय संदर्भ में, माता-पिता की स्नेही देखभाल और भोग, माता-पिता और अन्य बड़ों (माता-पिता की सर्वोच्चता और अधिकार) के प्रति निर्विवाद आज्ञाकारिता की अपेक्षा निर्भरता और व्यक्तित्व की कमी को जन्म देती है। हालाँकि, यह सहिष्णुता, सहकारिता और अहिंसा की सुविधा भी देता है। शौचालय प्रशिक्षण पर न्यूनतम मांग सामाजिक जीवन में सहिष्णुता की ओर ले जाती है। अपने बच्चों के प्रति माताओं का उदार रवैया अत्यावश्यकता, समयपालन की कमी और आलस्य की भावना की ओर ले जाता है।

बच्चों के व्यक्तित्व विकास में मातृ-शिशु सहजीवन की विशिष्ट भूमिका होती है। बच्चों का जीवन के प्रत्येक चरण में धीरे-धीरे समाजीकरण होता है।

यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि भारतीय पारंपरिक दृष्टिकोण यानी ज्यादातर सहिष्णुता, सकारात्मकता, लगातार मानवतावादी और नियतात्मक। बच्चा अपनेपन की भावना के साथ एक सुरक्षित आधार के साथ विकसित होता है और पर्यावरण का सामना करने के लिए आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ता है। बच्चे के पालन-पोषण के अभ्यास में सकारात्मक दृष्टिकोण बचपन की प्रतिगामी प्रवृत्तियों और असुरक्षा की भावना का प्रतिकार करता है।

जीवन के प्रत्येक चरण में रीति-रिवाजों की पारंपरिक प्रथाओं के कारण पहचान और अपनेपन की भावना का संचार होता है। पारंपरिक प्रथाओं के कारण पहचान संकट की समस्याएं हमेशा कम हो जाती हैं। इसलिए, भारतीय संदर्भ में फ्रायडियन अभिधारणा पूर्ण रूप से लागू नहीं होगी। भारतीय संस्कृति में बाल पालन प्रथाओं की कुछ कमियां हैं। संयुक्त परिवार कुछ हद तक दमनकारी है और स्वतंत्रता और उपलब्धि की आकांक्षा के विकास में हस्तक्षेप करने की संभावना है। निर्भरता को प्रोत्साहित करना, लंबे समय तक बचपन और बालिकाओं की सापेक्ष अस्वीकृति भी पर्याप्त व्यक्तित्व विकास के रास्ते में आई।

भारतीय संदर्भ के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन की आवश्यकता:- भारत में मनोवैज्ञानिक समस्याओं के नैदानिक अध्ययन और प्रबंधन को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक बनाने की आवश्यकता है ताकि नैदानिक पेशे को सामाजिक प्रासंगिकता के संकट से बाहर निकाला जा सके, जैसा कि सिन्हा कहते हैं। (सिन्हा 1986)। इस संबंध में नंदय ने इशारा किया था कि हमें अपने देश की विशेष प्रकृति की उपेक्षा करके संस्कृति से संबंधित पश्चिमी अवधारणाओं और सिद्धांतों को पूर्ण स्वीकृति नहीं देनी चाहिए। भारतीय चिकित्सकों को भारतीय व्यवस्था के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की अनदेखी करते हुए केवल पश्चिमी अवधारणाओं के प्राप्तकर्ता नहीं होने चाहिए, जिसकी अपनी विशिष्टताओं के साथ मजबूत धार्मिक और आध्यात्मिक आधार है। इसलिए भारतीय चिकित्सक-वैज्ञानिक को भारतीय संदर्भ के लिए महत्वपूर्ण समस्याओं पर ध्यान देना चाहिए और मिट्टी से जुड़े लोगों के लिए लागू सिद्धांतों और रणनीतियों को विकसित करना चाहिए।

8.7 सारांश (Summary)

भारतीय विकासात्मक मनोविज्ञान देश की तीन प्रमुख परम्पराओं अर्थात् हिंदुत्व, जैन धर्म और बौद्ध धर्म में अन्तर्निहित चेतना, मन और व्यवहार के बारे में ज्ञान का समृद्ध निकाय है, जो हमें अपने प्राचीन चिन्तकों से विरासत में मिला है|

भारतीय प्रणाली में विकास के मनोवैज्ञानिक चरण और विकास कार्यों के प्रत्येक चरण में मानव विकास अच्छी तरह से वर्णित है। विकास परिवार, समाज और संस्कृति के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है।

भारतीय प्रणाली की अवधारणा है कि मानव विकास चरणों की श्रृंखला में प्रकट होता है। जीवन के प्रत्येक चरण को विशेष जीवन कार्यों के रूप में देखा जाता है।

भारतीय परंपरा में, वैश्विक विकास को बहुत महत्व दिया जाता है, अर्थात, बाल विकास के शारीरिक, भावनात्मक और सामाजिक पहलुओं को। यह एक समग्र दृष्टिकोण है। आयुर्वेदिक साहित्य में शिशुओं और बच्चों की देखभाल के बारे में विस्तृत निर्देश हैं। भारतीय मनोविज्ञान दो सार्वभौमिक तत्वों, 'पुरुष' और 'प्रकृति' को मानव अस्तित्व का आधार मानता है।

भारतीय दर्शन और मनोविज्ञान व्यक्ति की प्रकृति और उसके विकास को समझने और समझाने के लिए पंचकोश दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण मानता है। यह अवधारणा पांच कोशों के सिद्धांत पर आधारित है, जो विकास के पांच अलग-अलग चरणों का वर्णन करती है।

8.8 शब्दावली (Glossary)

अपवाद - अपवाद हिंदी भाषा का शब्द है जो अपनी श्रेणी की सभी सामान्य गतिविधियों को खंडन स्वयं करता है। अपवाद वह स्थिति है जहाँ सामान्य धारणा या आकलन के स्थान पर नया परिणाम मिलता है ऐसी स्थिति को अपवाद माना जाता है।

प्रतिगामी प्रवृत्तियों - विपरीत स्वभाव

8.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

1. मानव विकास के भारतीय मॉडल के चरण और जीवन कार्य की तुलना "पश्चिमी प्रणाली” के साथ करिये।
2. मानव विकास के भारतीय मॉडल का विस्तृत वर्णन कीजिये?
3. भारत में विकासात्मक मनोविज्ञान के विकास पर लेख लिखिए|

8.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. भारतीय मनोविज्ञान का आधुनिक काल कहाँ प्रारम्भ हुआ|

   A) दिल्ली C) मुंबई

   B) कलकत्ता D) बनारस
2. भारतीय मनोविज्ञान का प्रथम पाठ्यक्रम किस वर्ष प्रारम्भ हुआ|

   A) 1915 C) 1938

   B) 1935 D) 1918
3. ‘इंडियन साइकोएनेलिटिकल एसोसिएशन’ की स्थापना किसके द्वारा की गयी?

   A) प्रो. गिरीन्द्रशेखर बोस C) डा. दुर्गानन्द सिन्हा

   B) डॉ० एन.एन. सेनगुप्ता D) डा. वासुदेव आचार्य

4. "भारतीय मनोविज्ञान दो सार्वभौमिक तत्वों, 'पुरुष' और 'प्रकृति' को मानव अस्तित्व का आधार मानता है"| यह किस दर्शन के अनुसार सत्य है|
   A) उपनिषद्   C) सांख्य दर्शन
   B) बौद्ध दर्शन   D) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर: 1. B 2. A 3. A 4. C

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

- Indian thoughts on psychological human development.
- INDIAN MODEL OF STAGES IN HUMAN DEVELOPMENT AND DEVELOPMENTAL TASKS. K. RANGASWAMI
- Anandalabhd S. (1075) Socialisation for competence. In J.W. Berry and J.W. Lener (Eds). Applied cross cultural psychology. Swets and Zeitliner: Amatradam.

इकाई- 9 भारतीय संदर्भ में बाल विकास पर उभरते मुद्दे :बाल शोषण, मीडिया प्रभाव, विविध पारिवारिक संदर्भों में पालन-पोषण की प्रथा (Emerging issues on child development in the Indian context: Child abuse, Media impact, Parenting practices in diverse family context)

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 बाल विकास का तात्पर्य

9.4 बाल विकास से संबद्ध मुद्दे

9.5 बाल शोषण

9.5.1 बाल शोषण के प्रकार

9.5.2 बाल शोषण के कारण

9.5.3 बाल शोषण रोकने के उपाय

9.6 बाल शोषण पर मीडिया प्रभाव

9.7 पालन पोषण के तरीके और बाल विकास

9 .8 सारांश

9.9 शब्दावली

9.10 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1. **प्रस्तावना :---**

बालक को " लघु वयस्क" (Mini Adult) कहा गया है। आज का बालक ही कल का वयस्क होगा, अतः वयस्क अवस्था तक व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास हो सके इसके लिए आवश्यक है कि गर्भाधान से ही विकास की सतत प्रक्रिया और प्रभावित रूप से निरंतर चलती रहे। परंतु, दुर्भाग्यवश बाल शोषण, गलत पालन पोषण, सामाजिक मीडिया के कुप्रभाव एवं सामाजिक असंवेदनशीलता के कारण ना सिर्फ भारत में बल्कि दुनिया के कोने कोने में बालकों का विकास उचित ढंग से नहीं हो पाता है और इसका खामियाजा पूरे समाज को भुगतना पड़ता है।

वर्ष 2011 की जनगणना में यह तथ्य उभरकर आया कि दुनिया में 15 करोड़ 20 लाख बाल मजदूर हैं जिनमें 8 करोड़ 80 लाख लड़के हैं तथा 6 करोड़ 40 लाख लड़कियां हैं। उसी जनगणना के आधार पर भारत में 56 लाख लड़के तथा 45 लाख लड़कियां बाल मजदूर पाए गए। अनुमान लगाया गया कि संसार के प्रत्येक 10 बच्चों में से एक बच्चा बाल मजदूर है।

बाल मजदूरी करने वालों मैं भी निम्नलिखित तीन कार्यों में बाल मजदूर अधिक मिलते हैं– बंधुआ मजदूरी का कार्य, बाल सैनिक का कार्य तथा देह व्यापार का कार्य। इसके अतिरिक्त भारत में विभिन्न उद्योगों में भी बाल मजदूरों को देखा जा सकता है, जैसे- ईंट भट्ठा उद्योग, गलीचा बुनाई, वस्त्र उद्योग, घरेलू कामकाज, होटल, चाय की दुकान, खनन, खेती-बाड़ी आदि। इसके अतिरिक्त बच्चे यौन उत्पीड़न और चाइल्ड पोर्नोग्राफी के शिकार भी बड़े पैमाने पर हो रहे हैं।

बाल विकास से संबंधित उपरोक्त मुद्दों एवं समस्याओं ने समाज चिंतकों एवं मनोवैज्ञानिकों के लिए एक चुनौती पैदा की है जिस पर आए दिन चर्चाएं होती हैं और इनसे निपटने हेतु रणनीति तैयार की जाती है।

पिछले इकाइयों में आपने मानव विकास के अध्ययन विधियां, भारत में विकासात्मक मनोविज्ञान तथा विकास पर संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में भारत के परिप्रेक्ष्य में बाल विकास के उभरते मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है और विशेष रूप से बाल शोषण, मीडिया प्रभाव एवं पालन पोषण के प्रथम से होने वाले नुकसानों की चर्चा की गई है।

9. 2 उद्देश्य :---

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप ––---

1 . बाल विकास के संप्रत्यय को समझ सकें।

2 . बाल शोषण के प्रकार एवं कारणों पर प्रकाश डाल सकें ।

3 . बाल विकास पर मीडिया के प्रभाव को रेखांकित कर सकें ।

4 . बाल विकास के संदर्भ में पालन पोषण की प्रथा की व्याख्या कर सकें।

9.3- बाल विकास का तात्पर्य :

बाल विकास को समझने के लिए विकास का अर्थ जान लेना आवश्यक है । प्राणियों से भरे इस संसार में जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाले अनेकानेक क्रमिक परिवर्तन, जो शारीरिक और मानसिक होते हैं, विकास कहलाते हैं। विकास एक सतत प्रक्रिया है जो अनवरत चलती रहती है। इसका प्रारंभ वास्तव में गर्भाधान से ही शुरू होजाता है। इसलिए विकास को प्राणी में पाई जाने वाली एक स्वाभाविक प्रक्रिया भी कहते हैं।

जब हम मानव की बात करते हैं तो यहां भी विकास का एक क्रम देखने को मिलता है जिसके अंतर्गत इसके तीन रूप दृष्टिगोचर होते हैं उत्पत्ति (origin), वृद्धि (growth), एवं अपकर्ष (Fall)।

बाल विकास में मुख्य रूप से बालक के रूप, व्यवहार, रुचियां एवं लक्ष्यों में होने वाले उन विशिष्ट परिवर्तनों की खोज पर बल दिया जाता है जो उसके एक विकासात्मक अवस्था से दूसरे विकासात्मक अवस्था में पदार्पण करते समय होते हैं। साथ ही, यह भी जानने का प्रयास किया जाता है कि यह परिवर्तन कब होते हैं, इसके लिए कौन कौन से कारक जिम्मेदार हैं और इस परिवर्तन का स्वरूप वयक्तिक है अथवा सार्वभौमिक?

बाल विकास पर हुए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि बालक के सभी विकास एक दूसरे से परस्पर संबंधित होते हैं। यदि एक भी विकास सही ढंग से नहीं हो पाया तो उसका संपूर्ण विकास बाधित हो जाएगा। विकास शारीरिक हो या मानसिक, सामाजिक हो या संवेगात्मक, यह सभी सभी एक दूसरे से जुड़े होते हैं ।

सबसे पहले बालक अपने सिर और भुजाओं की गति पर नियंत्रण सीखता है, फिर पैरों की गति पर। तभी वह अच्छी तरह से बिना सहारे के खड़ा होना और चलना सीखता है। विकास का क्रम प्रॉक्सिमो - डिस्टल (Proximo- distal) होता है। यानी विकास केंद्र से प्रारंभ होकर बाहरी अंगों की ओर और फिर संपूर्ण विकास की ओर अग्रसर होता है।

बाल विकास के अंतर्गत मूलतः जन्म से लेकर किशोरावस्था तक के बच्चों में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है इसी अवधि में वे निर्भरता से धीरे-धीरे स्वायत्तता की ओर बढ़ते हैं।

9 . 4- बाल विकास से संबद्ध मुद्दे :---- -

बाल विकास के संप्रत्यय पर चर्चा से स्पष्ट है कि गर्भाधान से लेकर किशोरावस्था तक चलने वाली एक सतत प्रक्रिया जो बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व सांवेगिक रूप से परिपक्व बनाए तथा उसे निर्भरता से स्वायत्तता की ओर अग्रसर करे, विकास कहलाता है। परंतु दुर्भाग्यवश हमारे समाज में बच्चों का विकास वास्तव में एक सतत प्रक्रिया न होकर बाधित प्रक्रिया हो गई है। उनका विकास क्रम आज दुर्व्यवहार, हिंसा, शोषण, भूखमरी, भेदभाव आदि का शिकार हो गया है। यदि हम अपने आस-पड़ोस में झांक कर देखें तो पाते हैं कि छोटे-छोटे बच्चे स्कूल जाने के बदले मजदूरी के कामों में लगे हुए हैं। होटलों में बर्तन साफ करते, साइकिल/ मोटरसाइकिल/ कारों में हवा भरते, पंक्चर बनाते, छोटे-छोटे कारखानों में कार्य करते हुए वे प्रायः देखे जाते हैं। गरीबी और नासमझी के कारण जहां वे अपने ही मां-बाप से तिरस्कार पाते हैं वही कार्यस्थल पर भी विभिन्न तरह की हिंसा के शिकार होते हैं । पूरी दुनिया में प्रजातांत्रिक शिक्षा का बोलबाला है, दंड आधारित शिक्षा पर रोक है, बच्चों के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए उसके' स्व' को विकसित होने का पूरा अवसर देने और किसी भी तरह का भय न उत्पन्न होने देने की बात कही गई है। यानी, बच्चों की पूरी शिक्षा उसे एक स्वतंत्र और निर्भय इंसान बनाने वाली हो। आज भी स्कूली शिक्षा पर बाबा नागार्जुन की यह पंक्ति याद आती है—-

घुन खाए शहतीरों पर

कि बारहखड़ी विधाता बांचे

फटी भीत है, छत है चूती

आले पर बिस्तुइया नाचे

लगा लगा बेबस बच्चों पर

मिनट मिनट में पांच तमाचे

इसी तरह से दुखहरण मास्टर

गढ़ता है आदम से सांचे।

अतः बाल मजदूरी और बच्चों की शिक्षा आज भी एक समस्या बनी हुई है। हालांकि सरकार द्वारा इस दिशा में काफी सुधारात्मक प्रयास किए गए हैं, बाल अधिकार और शिक्षा अधिकार संबंधी कानून भी बनाए गए हैं, परंतु जमीनी हकीकत कुछ और ही है और इस दिशा में काफी सामाजिक प्रयास की जरूरत है।

दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा भेदभाव का है जो जातिगत, धर्मगत और सबसे अधिक लिंगगत है। जहां भारतीय समाज में बच्चे जातिगत और धर्मगत भेदभाव के शिकार हैं वही लिंगगत भेदभाव तू सर्वव्यापी है और लोग भ्रूण हत्या तक करने में नहीं हिचकते। आज भी भारतीय समाज में बड़ी संख्या में पिछड़ी व अनुसूचित जाति के बच्चे स्कूली शिक्षा से वंचित रह जाते हैं क्योंकि या तो वे पहली पीढ़ी के अधिगमकर्ता होने के कारण पारिवारिक पृष्ठभूमि शिक्षा के प्रतिकूल पाते हैं और लाचार होकर उन्हें बीच में ही पढ़ाई छोड़नी पड़ती है या फिर अत्यधिक गरीबी के कारण परिवार के लिए अर्थार्जन करने को मजबूर होते हैं ,फलतः बाल मजदूरी के शिकार होते हैं।

धर्मगत भेदभाव के कारण अलग-अलग संप्रदाय के बच्चों में सामाजिक दूरी पैदा की जाती है और शिक्षा की समरूपता प्रभावित होती है।

आज भी भारतीय ग्रामीण समाज में लड़कियों की शिक्षा को अनिवार्य नहीं समझा जाता है। यहां तक कि लड़कियां पैदा होने से पहले ही भ्रूण हत्या का शिकार होती हैं क्योंकि समाज अभी भी लड़कों को परिवार के लिए ज्यादा उपयोगी और वंश चलाने वाला मानता है।

लिंगभेद समाज पर आज भी इतना हावी है कि स्त्री बाल शिशु को जन्म लेने से रोका जाता है, उन्हें या तो गर्भ में ही या जन्म के बाद मार डाला जाता है। परिवार और समाज में भी उन्हें पालन पोषण संबंधी भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। बाल विवाह, बलात्कार, तिरस्कार जैसे अन्यायपूर्ण स्थितियों का सामना करना पड़ता है।

कुल मिलाकर आज भी भारतीय समाज बाल विकास के जिन ज्वलंत मुद्दों का सामना कर रहा है वह है- बाल शोषण, लैंगिक भेदभाव, सोशल मीडिया का कुप्रभाव, पालन पोषण की अलग-अलग प्रथाएं, कुपोषण और सामाजिक वंचना।

9 .5 – बाल शोषण :---

बाल शोषण आधुनिक समाज की एक अति गंभीर बीमारी है। यह एक सामाजिक बीमारी है। इसकी गिरफ्त मैं बच्चों की तमाम खुशियों, उनकी शिक्षा, उनका वास्तविक विकास सभी कुछ आ चुका है । यह शोषण लिंगभेद से परे है – बालक हो या बालिका सभी इसका शिकार हो रहे हैं। जब 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चे बच्चियों को शारीरिक या मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है तो उसे ही बाल शोषण कहते हैं। इसके अंतर्गत बच्चों के साथ होने वाली हर वह घटना आती है जो शारीरिक, मानसिक या यौन प्रताड़ना से संबंधित होती है और वह उनमें शारीरिक चोट अथवा भय उत्पन्न करती है।

बाल शोषण सिर्फ भारत की ही नहीं अपितु दुनिया के तमाम देशों की एक ज्वलंत समस्या है, एक उभरता मुद्दा है, खासकर यौन शोषण से संबंधित मुद्दे। भारत में यौन पर खुलकर चर्चा करना सामाजिक शर्म और अपराध माना जाता है। यही कारण है कि यहां के विद्यालयों में भी यौन शिक्षा का अभाव है। इस विषय पर न माता-पिता खुलकर चर्चा करने की स्थिति में होते हैं और न ही स्कूल के शिक्षक । नतीजा यह होता है कि यौन शोषण से संबंधित बातें बच्चों द्वारा ना तो माता-पिता को बताया जाता है और नहीं शिक्षकों को क्योंकि इस विषय में किसी से बात करने मैं बच्चे खुद को असहज महसूस करते हैं, शर्मिंदगी महसूस करते हैं। यदि वे बता भी दे तो माता-पिता भी इसे छिपा जाते हैं क्योंकि उन्हें समाज में बदनामी का भय सताने लगता है। परिणाम स्वरूप समाज में इस तरह का अपराध करने वाले दंडित नहीं हो पाते और उनके द्वारा इस तरह का शोषण चलता रहता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि बाल शोषण जैसी सामाजिक बुराई अशिक्षित समाज से कहीं अधिक शिक्षित समाज में देखी जा रही है, इसीलिए आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इसे "पीडोफिलिया"(Paedophilia) कहा है जो एक प्रकार का मानसिक रोग है।

9 . 5 . 1 — बाल शोषण के प्रकार

1. शारीरिक शोषण:--- जब किसी बच्चे को जानबूझ कर शारीरिक तौर पर नुकसान पहुंचाया जाता है तो इसे शारीरिक शोषण कहते हैं। विभिन्न प्रकार के यौन शोषण भी इसी के अंतर्गत आते हैं। शारीरिक शोषण के संकेत और लक्षण निम्नलिखित तरह के हो सकते हैं —

अ.अनचाही चोट- जैसे खरोच लगना, जलन होना, फ्रैक्चर होना आदि।

ब. ऐसी चोट जो बच्चे की समझ में न आए या फिर जिसकी वजह सामान्य न हो।

स.ऐसी चिकित्सकीय समस्या जो अनु प्रचारित हो या फिर दांत से संबंधित समस्या आदि।

2. भावनात्मक शोषण :--- इसके अंतर्गत बच्चे के आत्मसम्मान या भावनात्मक स्थिति को नुकसान पहुंचाया जाता है। इसमें मौखिक रूप से डांटना, गाली गलौज करना, जबरन शांत कराना, अनदेखा करना, अस्वीकार करना, अकेले बंद रखना आदि आते हैं। भावनात्मक शोषण के संकेत और लक्षण निम्नलिखित हो सकते हैं —-

अ.भावनात्मक विकास में बाधा या फिर अनुचित भावनात्मक विकास।

ब. आत्म सम्मान एवं आत्मविश्वास में कमी महसूस करना।

स. अवसाद ग्रसित होना।

द. बिना किसी चिकित्सकीय कारण के सिर दर्द या पेट दर्द का अनुभव करना।

प.स्कूल जाने में अनिच्छा प्रकट करना।

फ. कक्षा निष्पादन का निम्न स्तर होना आदि।

3. बाल उपेक्षा :--- बच्चों को पर्याप्त भोजन न देना,उसे शिक्षा व स्वास्थ्य से वंचित रखना, सामाजिक वंचना का शिकार बनाना, स्नेह, आश्रय से वंचित रखना भी बाल उपेक्षा के अंतर्गत आने वाला शोषण है। बाल उपेक्षा के संकेत और लक्षण निम्नलिखित हैं —-

अ.शारीरिक विकास में कमी होना, यानी वजन में कमी ।

ब. शारीरिक स्वच्छता की कमी।

स. शारीरिक जरूरतों के हिसाब से कपड़ों की कमी।

द.स्कूल में खराब उपस्थिति।

प.अनुशासनहीनता में वृद्धि।

फ. उदासी एवं अन्य मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करनाआदि।

9 . 5. 2 - बाल शोषण के कारण –

बाल शोषण क्यों होता है? इसके कौन-कौन से कारण हैं? क्या इसका कारण परिवार के भीतर है या परिवार के बाहर? क्या बच्चों के माता-पिता भी इसमें शामिल हैं? इन सभी प्रश्नों का उत्तर तलाशने का प्रयास समाज वैज्ञानिकों द्वारा किया गया है और विभिन्न अध्ययनों के आधार पर पता चला है कि बाल शोषण के पारिवारिक और सामाजिक दोनों कारण है। पारिवारिक कारणों में महत्वपूर्ण है– माता पिता के बीच कलह, बच्चे मां बाप की ज्यादा उम्मीदें, बड़ा परिवार होने के कारण विशेष देखभाल का अभाव, माता-पिता या परिवार के सदस्यों में दंडित करने की नीयत , परिवार में आर्थिक तंगी, काम का दबाब, बच्चों के पालन पोषण में उचित ज्ञान और कौशल की कमी आदि।

सामाजिक कारणों में शिक्षा का अभाव, गरीबी, बार-बार रहने की जगह में परिवर्तन, अकेलापन और सामाजिक अलगाव, बेरोजगारी, रहने के लिए घर न होना आदि महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त कुछ सामुदायिक दृष्टिकोण भी बाल शोषण को प्रोत्साहित कर सकते हैं, जैसे- बच्चों को शारीरिक तौर पर सजा देने की प्रथा, शारीरिक रूप रंग पर बच्चों का आकलन, जातिवाद/ धर्मवाद/ क्षेत्रवाद/ भाषावाद का असर, लिंग भेद करना आदि।

रॉस (1996) ने बताया कि जो मां-बाप कलह की स्थिति में जीवन गुजारते हैं, बात बात में गाली गलौज करते हैं, मारपीट पर उतारू हो जाते हैं वे गुस्से की स्थिति में अपने बच्चों के साथ भी मारपीट करते हैं तथा गाली गलौज का व्यवहार अपनाते हैं। हालांकि मां-बाप के बीच की कलह कहां तक बाल हिंसा का कारण है, यह कहना मुश्किल है क्योंकि कलह और हिंसा दोनों ही गाली गलौज की प्रवृत्ति का परिणाम हो सकती है।

ट्वेंटीमैन एवं प्लॉटकिन (1982) ने अपने अध्ययन में पाया कि कभी-कभी माता पिता अपने बच्चों की क्षमता से बहुत अधिक प्रत्याशी तय कर लेते हैं जो यथार्थ से बहुत दूर होती है और इसकी पूर्ति नहीं होने पर वह बच्चों के साथ हिंसात्मक व्यवहार प्रदर्शित करते हैं।

ऐसा भी देखा गया है कि जिस मां-बाप के पास बच्चों की संख्या अधिक होती है वे सभी बच्चों पर सही ढंग से ध्यान नहीं दे पाते हैं और पालन-पोषण के क्रम में बच्चों के साथ हिंसात्मक व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। डुरंटजोन (2012)ने अपने अध्ययन में देखा कि कुछ मां-बाप “ दंड देने की नीयत “

रखते हैं और बात बात पर बच्चों को थप्पड़ मारते हैं। इन्होंने अपने अध्ययन में यह भी देखा कि मां-बाप द्वारा घायल किए गए कुछ बच्चों को चिकित्सीय सहायता की जरूरत पड़ गई।

परिवार में आर्थिक तंगी रहने पर माता पिता बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अक्षम होते हैं और किसी सामान के लिए जिद करने की स्थिति में हिंसात्मक व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। परिवार में कार्य दबाव अधिक रहने पर भी माता-पिता या परिवार के सदस्यों में बच्चों की देखभाल के लिए समय का अभाव रहता है और वैसी स्थिति में वे बच्चों पर हिंसात्मक व्यवहार प्रदर्शित करते पाए गए हैं।

पारिवारिक कारणों में एक महत्वपूर्ण कारक है माता-पिता में बच्चों के पालन पोषण संबंधी ज्ञान और कौशल की कमी। बच्चों में जिद की प्रवृत्ति उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, परंतु जिस माता-पिता में बच्चों की जिद या उनकी समस्याओं से निपटने की कला या ज्ञान का अभाव होता है,वे हिंसा का प्रयोग करते हैं, बच्चों के साथ गाली गलौज करते हैं।

बाल शोषण के सामाजिक कारणों में अशिक्षा और गरीबी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक हैं। जहां अशिक्षा है, गरीबी है वहां न तो बच्चों की उचित देखभाल हो पाती है और न ही उसे पढ़ाई-लिखाई की सुविधा उपलब्ध हो पाती है। भारतीय परिवारों में, खासकर मजदूरों के परिवारों में अशिक्षा और गरीबी एक साथ दृष्टिगत होती है और देश की बड़ी आबादी में व्याप्त है। अभी तक प्रथम पीढ़ी के अधिगमकर्ता भी तैयार नहीं हो पाए हैं। ऐसे परिवारों में पति पत्नी यह अन्य सदस्यों के बीच लड़ाई झगड़े होते रहते हैं और इसका शिकार प्राय: बच्चे होते हैं। उन्हें मां-बाप के गाली गलौच या मारपीट का शिकार होना पड़ता है। कुछ परिवारों में बार-बार जगह बदलने के कारण बच्चों को एक सुरक्षित आस-पड़ोस भी नहीं मिल पाता और वह सामाजिक शोषण के शिकार होते हैं।

बेरोजगारी एक महत्वपूर्ण सामाजिक कारक है जो बाल शोषण के लिए जिम्मेदार है क्योंकि जिन बच्चों के मां-बाप रोजगार की तलाश में होते हैं उनमें सामाजिक निराशा और आर्थिक बदहाली ज्यादा होती है और सामाजिक परिस्थिति से उत्पन्न निराशा को वे कभी-कभी बच्चों पर गाली गलौज या मारपीट के माध्यम से प्रकट करते हैं।

जो व्यक्ति या परिवार अकेलापन या सामाजिक अलगाव का शिकार होता है वहां भी बच्चे असुरक्षित हो जाते हैं और कभी कभी दबंग समूह के द्वारा शारीरिक हिंसा के शिकार हो जाते हैं।

9 . 5 . 3 बाल शोषण रोकने के उपाय :--

बाल शोषण रोकने के लिए जहां एक ओर शोषण के लिए उत्तरदायी कारकों के प्रति समाज को जागरूक रहने की जरूरत है वही बच्चों को शोषण के प्रति शिक्षित करने एवं सचेत रहने को प्रेरित करते रहने की आवश्यकता है। बाल श्रम, बाल विवाह, बाल हिंसा को जहां कानून और सामाजिक जागरूकता के द्वारा कम किया जा सकता है वही यौन शोषण को कानून एवं यौन शिक्षा के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता है। इस दिशा में मनोवैज्ञानिको एवं परामर्शदाताओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो सकती है जो एक और जहां शोषण से प्रभावित बच्चों को परामर्श सहायता उपलब्ध करा सकते हैं वहीं पेडोफीलिया से शिकार वयस्कों का इलाज कर सकते हैं।

अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि बाल शोषण के शिकार (खासकर यौन शोषण) बच्चों में से लगभग आधे(50 %) अपनी जान पहचान के लोगों या रिश्तेदारों द्वारा शोषण के शिकार होते हैं। अतः शोषण रोकने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम है अभिभावकों द्वारा सुरक्षा घेरा तैयार किया जाना। कभी भी 3 से 5 वर्ष के बच्चों को अकेला न छोड़ें, अपने घर आने जाने वाले रिश्तेदारों वह परिचितों पर भी नजर रखें तथा कभी भी किसी पर आंख बंद कर भरोसा न करें, खासकर नशा करने वाले संबंधियों व परिचितों से सावधान रहें।

माता पिता, अभिभावकों एवं शिक्षकों को चाहिए कि वह बच्चों को शारीरिक संरचना, शरीर के प्राइवेट अंगोंएवं यौन शोषण के बारे में जानकारी दें तथा सही स्पर्श एवं गलत स्पर्श के संबंध में जागरूक करें। गलत स्पर्श की स्थिति में बच्चों को स्पर्श करने वाले व्यक्ति से दूर रहने और इसे माता-पिता या शिक्षक को बताने हेतु प्रेरित करें ताकि बच्चा यौन शोषण का शिकार होने से बचे। शिक्षकों, अभिभावकों को चाहिए कि वह बच्चों से समय-समय पर इस संबंध में पूछताछ करते रहें और उस पर निगरानी रखें। इस संबंध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बच्चों को किसी भी प्रकार की शर्मिंदगी का अनुभव न होने पाए। यदि मां-बाप खुद इस संबंध में हिचकिचाहट रखते हैं तो उन्हें किसी प्रोफेशनल काउंसलर की सहायता लेनी चाहिए। वैसे जो माता पिता, अभिभावक या शिक्षक बच्चों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार रखते हैं उनके बच्चों को उन्हें अपनी किसी भी समस्या को कहने में हिचकिचाहट नहीं होती। अतः बच्चों से मित्रतापूर्ण व्यवहार रखना अत्यावश्यक है।

ऐसा देखा जाता है कि ज्यादातर मां-बाप बच्चों को स्कूल भेजकर निश्चिंत हो जाते हैं; वह यह जानने की कोशिश ही नहीं करते कि बच्चों का स्कूल में अपने सहपाठियों, अध्यापकों एवं अन्य बच्चों तथा स्टाफ के साथ क्या संबंध है। एक समझदार अभिभावक को चाहिए कि वे अपने बच्चों के स्कूल

और अध्यापक से सदा संपर्क बनाए रखें तथा प्रत्येक दिन स्कूल से आने के बाद बच्चों से स्कूल, अध्यापक, दोस्तों आदि के बारे में बातचीत करें। स्कूल में पढ़ने वाले दूसरे बच्चों एवं सहपाठियों के मां-बाप के संपर्क में भी रहे ताकि घर और स्कूल के बीच की गतिविधियों के बारे में भी जानकारी मिलती रहे।

बाल शोषण रोकने के लिए शासन के स्तर पर भी कड़े कानून की आवश्यकता है। हालांकि देश में बाल श्रम, बाल विवाह आदि की रोकथाम के लिए कानून बनाए गए हैं और समाज पर इसका काफी प्रभाव भी देखा जा रहा है। सन 2012 में बाल शोषण के खिलाफ भी कड़ा कानून बनाया गया जिसे "प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन अगेंस्ट सेक्सुअल ऑफेंस बिल 2011" के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त " राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग" काफी का गठन भी किया गया है जिसका कार्य 18 वर्ष तक के सभी बच्चों की सुरक्षा एवं उनके संपूर्ण विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करना है।

9.6 बाल विकास पर मीडिया प्रभाव :----

व्यक्ति के समाजीकरण में मीडिया की भूमिका एक महत्वपूर्ण एजेंट के रूप में रही है तथा व्यक्तित्व विकास में इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट दोनों ही मीडिया का सार्थक प्रभाव देखा गया है, परंतु आए दिन सूचना प्रौद्योगिकी ने इतनी तरक्की कर ली है कि अब बाल विकास को धनात्मक एवं ऋण आत्मक दोनों ही ढंग से सोशल मीडिया प्रभावित करने लगा है क्योंकि सोशल मीडिया इंटरनेट के माध्यम से वह सब परोस रहा है जो बढ़ते नौनिहालों को आसमान की ऊंचाई न देकर खाई में धकेलने का काम करता है।

आजकल के बच्चे स्मार्टफोन के आदी हो चुके हैं। इन के माध्यम से सोशल मीडिया बच्चों की जिंदगी का हिस्सा बन गया है। जहां इस मीडिया द्वारा ज्ञानार्जन के अनेकानेक क्षेत्र खुल गए हैं वही बढ़ते बच्चों को एक ऐसी राह पर भी ले जाने लगे हैं जो कुमार्ग है, दलदल है।

यह सत्य है कि सोशल मीडिया की मदद से दुनिया भर के लोगों से कनेक्ट होने का मौका मिलता है और बच्चे अपने रिश्तेदारों, दोस्तों, शिक्षकों आदि से आसानी से कनेक्ट हो सकते हैं। बच्चों में बेहतर विचारधारा विकसित हो इसके लिए इस तरह का कनेक्शन अनिवार्य है।

नेटवर्किंग कौशल के विकास हेतु भी सोशल मीडिया से जुड़ना आवश्यक है । इससे बच्चे नई चीजें सीखते हैं और एक दूसरे के विचार भी साझा करते हैं। जो बच्चे सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते

हैं वे संप्रेषण कौशल में निपुण होते हैं जिससे बच्चों के प्रेरणा स्तर में वृद्धि होती है। ऐसे बच्चों को अपनी बातों को रखने में, विचारों को प्रकट करने में हिचकिचाहट नहीं होती। सोशल मीडिया के जरिए बच्चों के तकनीकी ज्ञान में वृद्धि होती है, उनका व्यावहारिक ज्ञान भी बढ़ता है। अतः इस दृष्टिकोण से सोशल मीडिया बाल विकास का एक सशक्त निर्धारक है। परंतु इसका एक ऐसा पहलू भी है जो" सावधानी हटी दुर्घटना घटी" की तरह कार्य करता है और इससे बच्चों को विकास क्रम में काफी नुकसान भी पहुंचता है।

चूँकि बच्चों का मन अत्यंत नाजुक और चंचल होता है, अतः सोशल मीडिया आसानी से उनके सोच और व्यवहार को बदल सकता है। छोटी उम्र में अविकसित आत्मन (सेल्फ) के कारण बच्चे अच्छे और बुरे में फर्क नहीं कर पाते, फलतः बच्चे सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव की चपेट में आ सकते हैं। उनकी पहुंच अश्लील, हानिकारक, ग्राफिक वेबसाइटों तक हो सकती है जो उनके चिंतन को प्रभावित कर सकती है। आए दिन सोशल मीडिया वेबसाइट के बीच साइबर बुलिंग में भी काफी वृद्धि हो गई है जिसका बुरा असर बच्चों पर पड़ सकता है। अध्ययन बताता है कि ऑस्ट्रेलिया में सर्वाधिक बच्चे और किशोर साइबर बुलिंग का शिकार हो रहे हैं। भारत में भी ऐसे बच्चों/ किशोरों की संख्या बढ़ती जा रही है।

स्पष्ट है कि जहां सोशल मीडिया बच्चों के विकास पर सकारात्मक प्रभाव डालता है वहीं इसका अति और असावधानी पूर्वक किया गया प्रयोग हानिकारक भी होता है । सोशल मीडिया पर बहुत अधिक समय बिताने पर बच्चों में स्मार्टफोन लत विकसित होता है जो एक मनोवैज्ञानिक बीमारी है जिसे "स्माटफोन एडिक्शन "के नाम से जाना जाता है और इसका बच्चों की नींद, उसकी सेहत पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वर्ष 2015 में ब्रिटिश साइकोलॉजिकल सोसाइटी के एक अध्ययन में पता चला कि पूरे दिन सोशल मीडिया पर पोस्ट लाइक करने, मैसेज का जवाब देने और दोस्तों से चैटिंग करने का असर बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है।

अतः अभिभावकों को चाहिए कि अपने बच्चों को स्मार्टफोन की लत से बचायें । उसे इंटरनेट की ज्ञान मई दुनिया की यात्रा कराएं और अश्लील, हानिकारक, साइबर बुलिंग जैसे साइट से बचायें ।

9.7 पालन पोषण के तरीके और बाल विकास :-----

बाल विकास पर पालन पोषण के तरीकों का क्या प्रभाव पड़ता है तथा क्या पालन पोषण का तरीका बच्चों के विकास का एक सार्थक निर्धारक है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिससे बाल विकास एवं शिक्षा के

क्षेत्र में रुचि रखने वाले विद्वानों का लंबे समय से संबंध रहा है और बाल विकास में पालन-पोषण के तरीके को इन विद्वानों द्वारा एक महत्वपूर्ण निर्धारक माना गया है। हालांकि बहुत सारे ऐसे भी समकालीन समाज विज्ञानी हुए हैं जिन्होंने बच्चों के विकास पर माता-पिता, परिवार और पालन-पोषण तकनीक को उतना महत्व न देकर अनुवांशिक कारकों की महत्ता बताई है। लेकिन ज्यादातर विशेषज्ञ आज भी यही मानते हैं कि बच्चों के सांवेगिक, संज्ञानात्मक एवं व्यावहारिक विकास पर इस बात का गहरा प्रभाव पड़ता है कि माता-पिता द्वारा उनका पालन पोषण कैसे किया गया है। उदाहरण स्वरूप, बच्चों के प्रति कठोरता बरतने वाले माता पिता के बच्चों में आक्रामकता का पाया जाना दर्शाता है कि माता पिता की शत्रुता बच्चों को क्रोधी स्वभाव का बनाता है। परंतु समाज विज्ञानियों ने इसके सामाजिक पहलू को भी टटोला और पाया कि निर्धनता के कारण माता-पिता में कठोरता विकसित होती है और बच्चों में आक्रामकता। इस दिशा में शोधकर्ताओं ने अनुदैर्ध्य अभिकल्पों का उपयोग कर समय के साथ पालन पोषण और बच्चों के समायोजन के बीच संबंधों का अध्ययन कर पाया कि समायोजन पर पालन पोषण में भिन्नता का सार्थक प्रभाव पड़ता है। कई शोधकर्ताओं ने बाल समायोजन पर माता-पिता केंद्रित हस्तक्षेपों के प्रभाव का भी अध्ययन कियाजिसमें माता-पिता के व्यवहार को किसी प्रकार के मनो शैक्षणिक उपचार के माध्यम से बदला गया और माता-पिता के हस्तक्षेप के संबंध में बच्चे के समायोजन में होने वाले परिणामी परिवर्तन की जांच कर इसे सार्थक पाया। नैंसी डार्लिंग एवं लॉरेंस स्टोनवर्ग (1993) ने भी पेरेंटिंग शैली और पेरेंटिंग प्रथाओं के बीच अंतर स्पष्ट करते हुए बताया कि पेरेंटिंग शैली एक लक्ष्य निर्देशित व्यवहार उत्पन्न कर बच्चों के विकास को भावनात्मक रूप से प्रभावित करता है।

पेरेंटिंग शैली पर दो दृष्टिकोणों से अध्ययन किया गया है —

1.आयामी दृष्टिकोण से

2.विन्यास संबंधी दृष्टिकोण से

आयामी दृष्टिकोण एक भी एकविमीय दृष्टिकोण है जिसके अंतर्गत तीन विमाओं पर पेरेंटिंग शैली के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है– गर्माहट, दृढ़ता और प्रतिबंधात्मकता ।

आयामी दृष्टिकोण में शोधकर्ता माता पिता के महत्वपूर्ण आयामों को अलग करते हैं और इनमें से एक या अधिक आयामों पर परिवर्तनशीलता और एक या अधिक बच्चों के परिणामों में परिवर्तनशीलता के बीच संबंधों की जांच करते हैं। पालन पोषण के इन आयामों में से प्रत्येक के संबंध में बाल समायोजन संकेतों के चार व्यापक सेटों की जांच की गई है– 1. मनोसामाजिक विकास जिसके अंतर्गत सामाजिक क्षमता, आत्म धारणा और आत्मनिर्भरता सम्मिलित हैं,2. स्कूल की उपलब्धि

जिसके अंतर्गत स्कूल के प्रदर्शन, स्कूल की व्यस्तता और शैक्षणिक प्रेरणा सम्मिलित है,3. आंतरिक संकट जिसके अंतर्गत अवसाद, चिंता और मनोदैहिक समस्याओं को रखा गया है ,4. समस्या व्यवहार जिसमें अपराधता,आक्रामकता तथा नशीली दवाओं और शराब का उपयोग सम्मिलित है। शोधकर्ताओं ने पाया कि यदि माता-पिता गर्म, दृढ़ और और अप्रतिबंधित होते हैं तो बच्चे और किशोर बेहतर प्रदर्शन करते हैं। यह भी देखा गया है कि माता पिता की दृढ़ता और प्रतिबंधात्मकता में भिन्नता बच्चों के विकास के कुछ पहलुओं में दूसरों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक योगदान देती है।

पेरेंटिंग का विन्यास संबंधी दृष्टिकोण पेरेंटिंग के लिए कुछ शैलियों की पहचान पर बल देता है जिसमें पेरेंटिंग की कुछ विशेषताएं संचित होती हैं।डायना बॉमरिंद (1971) निम्नलिखित चार पेरेंटिंग शैली का उल्लेख किया जो काफी प्रभावशाली रहा है। ये हैं –

1. आधिकारिक माता पिता, 2.सत्तावादी माता पिता, 3. अनुज्ञात्मक माता पिता,

4. उदासीन माता पिता।

आधिकारिक माता पिता बच्चे के आचरण के लिए मानक निर्धारित करते हैं तथा उनसे ऐसी अपेक्षा रखते हैं जो बच्चे की विकासशील आवश्यकता और क्षमताओं के अनुरूप हों। आधिकारिक माता पिता अपने बच्चे के साथ तर्कसंगत, समस्या- उन्मुख तरीके से व्यवहार करते हैं तथा अक्सर अनुशासन के मामलों पर अपने बच्चों के साथ चर्चा और स्पष्टीकरण में संलग्न होते हैं।

सत्तावादी माता पिता अधिनायकवादी होते हैं तथा आज्ञाकारिता और अनुरूपता पर एक उच्च मूल्य रखते हैं। ऐसे माता-पिता अधिक दंडात्मक, पूर्ण और सशक्त अनुशासनात्मक उपायों का समर्थन करते हैं। सत्तावादी माता-पिता की अंतर्निहित धारणा यह होती है कि बच्चे को माता पिता द्वारा स्थापित नियमों और मांगों को बिना किसी प्रश्न के स्वीकार करना चाहिए।

अनुज्ञात्मक माता पिता अनुमति प्रदान करने वाले माता-पिता होते हैं तथा अनुशासन के मामलों में एक स्वीकार्य, सौम्य और कुछ हद तक निष्क्रिय तरीके से व्यवहार करते हैं। ऐसे माता-पिता बच्चों के व्यवहार पर अपेक्षाकृत कम नियंत्रण रखते हैं ताकि बच्चे को अपनी इच्छानुसार कार्य करने की उच्च स्तर की स्वतंत्रता प्राप्त हो सके।

उदासीन माता पिता अपने बच्चे की गतिविधियों के प्रति अनासक्त भाव प्रदर्शित करते हैं। उन्हें ना तो अपने बच्चों के दिन प्रतिदिन के क्रियाकलापों की जानकारी होती है और ना ही वे बच्चों के

अनुभवों को सुनने में रुचि दिखाते हैं। वे शायद ही कभी अपने बच्चों के साथ बातचीत करते हैं तथा निर्णय लेते समय उनकी राय पर विचार करते हैं।

शोध में पाया गया है कि आधिकारिक माता-पिता के बच्चे मनोसामाजिक विकास, स्कूल की उपलब्धि, आंतरिक संकट और समस्या व्यवहार के उपायों पर अपने साथियों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन करते हैं जबकि उपेक्षित घरों के लोग परिणामों के सभी 4 सेटों में खराब स्कोर करते हैं।

दरअसल, आधिकारिक माता पिता अपने बच्चों को, जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं, अधिक स्वतंत्रता देते हैं। फलतः बच्चों को आत्मनिर्भरता और आत्म आश्वासन प्राप्त होने में मदद मिलती है। यही कारण है कि आधिकारिक पालन पोषण विकास को बढ़ावा देता है और जीवन के तनाव एवं असामाजिक साथियों के संपर्क सहित विभिन्न संभावित नकारात्मक प्रभावों का सामना करने की उनकी क्षमता को बढ़ाता है। चूँकि आधिकारिक माता पिता अपने बच्चों के साथ मौखिक रूप से अधिक सक्रिय होते हैं, अतः वे बच्चों में उस तरह के बौद्धिक विकास को बढ़ावा देने की संभावना रखते हैं जो मनोसामाजिक क्षमता के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

सामाजिक शोधों में यह भी पाया गया है कि विभिन्न जातीय समूहों के माता-पिता अपने बच्चे के पालन पोषण में भिन्न होते हैं। माता-पिता की प्रथाएं अक्सर सांस्कृतिक मूल्यों और विश्वासों से जुड़ी होती हैं

9.8 सारांश

बाल विकास में से बालकों के रूप, व्यवहार, रुचियों एवं लक्ष्यों मैं होने वाले उन विशिष्ट परिवर्तनों की खोज पर बल दिया जाता है जो उसके एक विकासात्मक अवस्था से दूसरे विकासात्मक अवस्था में पदार्पण करते समय होते हैं। बाल विकास के अंतर्गत मूलतः जन्म से लेकर किशोरावस्था तक के बच्चों में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। इसी अवधि में बच्चे निर्भरता से धीरे-धीरे स्वायत्तता की ओर बढ़ते हैं। अतः कहा जा सकता है कि विकास एक सतत प्रक्रिया है जो गर्भाधान से लेकर किशोरावस्था तक बच्चों को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व सांवेगिक रूप से परिपक्व बनाती है तथा निर्भरता से स्वायत्तता की ओर अग्रसर करती है।

परंतु दुर्भाग्यवश हमारे समाज में बच्चों का विकास वास्तव में एक सतत प्रक्रिया न होकर बाधित प्रक्रिया हो गई है। आज उनका विकास क्रम दुर्व्यवहार, हिंसा, शोषण, भूखमरी, भेदभाव आदि का शिकार हो गया है। आज का भारतीय समाज बाल विकास के जिन ज्वलंत मुद्दों का सामना कर रहा

है वे है – बाल शोषण, लैंगिक भेदभाव, सोशल मीडिया का कुप्रभाव, पालन पोषण की अलग-अलग प्रथाएं, कुपोषण, सामाजिक वंचना आदि।

बाल शोषण आधुनिक समाज की एक अत्यंत गंभीर बीमारी है। एक ऐसी सामाजिक बीमारी है जिसकी चपेट में बच्चों की तमाम खुशियां, उनकी शिक्षा, उनका वास्तविक विकास सभी कुछ आ चुका है। बाल शोषण के कुछ महत्वपूर्ण प्रकार हैं— शारीरिक शोषण, भावनात्मक शोषण, बाल उपेक्षा।

बाल शोषण के पारिवारिक कारणों में माता पिता के बीच कलह, बच्चों से माता-पिता की ज्यादा उम्मीदें, बड़ा परिवार होने पर विशेष देखभाल का अभाव, माता-पिता या परिवार के सदस्यों में दंडित करने की नीयत, बच्चों के पालन पोषण में उचित ज्ञान और कौशल की कमी आदि। सामाजिक कारणों में शिक्षा का अभाव, गरीबी, बार-बार रहने की जगह में परिवर्तन, बेरोजगारी, अकेलापन एवं सामाजिक अलगाव, रहने के लिए घर न होना आदि महत्वपूर्ण हैं।

इसके अतिरिक्त, कुछ सामुदायिक दृष्टिकोण भी बाल शोषण को प्रोत्साहित करते हैं, जैसे– बच्चों को शारीरिक तौर पर सजा देने की प्रथा, शारीरिक रूप रंग पर बच्चों का आकलन आदि।

बाल शोषण रोकने के लिए जहां एक और शोषण के लिए उत्तरदायी कारकों के प्रति समाज को जागरूक रहने की जरूरत है वही शोषण के प्रति बच्चों को शिक्षित करना एवं सचेत रहने को प्रेरित करते रहना आवश्यक है।

बच्चों के विकास पर सोशल मीडिया का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह का प्रभाव देखा गया है। इसके सकारात्मक प्रभाव के कारण ही बच्चे अपने रिश्तेदारों, दोस्तों, शिक्षकों आदि से आसानी से कनेक्ट हो पाते हैं और उनमें एक बेहतर विचारधारा विकसित होती है। उनमें नेटवर्किंग कौशल का विकास होता है और वे विचारों का आदान प्रदान कर संप्रेषण कौशल में निपुण होते हैं।

सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव बच्चों को कुमार्ग पर ले जाते हैं। उनकी पहुंच अश्लील, हानिकारक व ग्राफिक्स जैसे वेबसाइटों तक हो जाती है, वे साइबर बुलिंग के शिकार हो जाते हैं।

बाल विकास पर पालन पोषण के तरीकों का सार्थक प्रभाव देखा गया है। पेरेंटिंग शैली पर दो दृष्टिकोणों से अध्ययन किया गया है—आयामी दृष्टिकोण एवं विन्यास संबंधी दृष्टिकोण। आयामी दृष्टिकोण के अंतर्गत गर्माहट, दृढ़ता तथा प्रतिबंधात्मकता के परिप्रेक्ष्य में पेरेंटिंग का अध्ययन किया जाता है जबकि विन्यास संबंधी दृष्टिकोण के अंतर्गत पेरेंटिंग की निम्न चार विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में

बालकों के विकास का अध्ययन किया जाता है– आधिकारिक माता पिता, सत्तावादी माता पिता,अनुज्ञात्मक माता पिता एवं उदासीन माता-पिता।

9. 9 शब्दावली

विकास:-- एक सतत प्रक्रिया जो गर्भाधान से लेकर किशोरावस्था तक बच्चों को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व सांवेगिक रूप से परिपक्व बनाती है तथा उन्हें निर्भरता से स्वायत्तता की ओर अग्रसर करती है।

बाल शोषण:-- एक ऐसी सामाजिक बीमारी जिसकी गिरफ्त में बच्चों की तमाम खुशियां, उनकी शिक्षा, उनका सामाजिक विकास आदि आ जाता है और वे शारीरिक एवं सांवेगिक रूप से हिंसा के शिकार हो जाते हैं, उपेक्षित हो जाते हैं।

स्मार्टफोन एडिक्शन:-- स्मार्टफोन पर नित्य अधिकांश समय में रात और दिन का ख्याल किए बगैर सोशल मीडिया पर पोस्ट लाइक करने, दोस्तों से चैटिंग करने और मैसेज का जवाब देने से विकसित एक लत जो व्यक्ति को मानसिक रूप से बीमार बनाती है।

9.10 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न :

1. विकास क्रम प्रॉक्सिमो-डिस्टल होने का अर्थ है—-

   अ. विकास परिधीय अंगों से केंद्र की ओर अग्रसर होता है।

   ब. विकास केंद्र से परिधीय अंगों की ओर अग्रसर होता है।

   स. विकास का कोई निश्चित नियम नहीं होता।

   द. इनमें से कोई नहीं।

2. निम्नलिखित में से कौन डायना बॉमरिंद (1971) द्वारा उल्लिखित पेरेंटिंग शैली में शामिल नहीं है?

   अ. आधिकारिक माता पिता

   ब. सत्तावादी माता पिता

स. अनुभवी माता पिता

द. उदासीन माता पिता

9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Elizabeth B. Hurlock (2011),Developmental Psychology – A Life-Span Approach. 5th edition.
2. Santrock,,J.W. (1999).LifeSpan Development. New york: Mcgraw Hill.
3. Neil Frude (1980).Psychological Approaches to child Abuse (edited).Batsford Academic and Educational Ltd.London.

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.बाल विकास से आप क्या समझते हैं? बाल शोषण बालकों के विकास को कैसे प्रभावित करता है?

2.बाल शोषण के मुख्य कारण क्या हैं? इन्हें कैसे रोका जा सकता है?

3.बाल विकास पर सोशल मीडिया के प्रभाव को रेखांकित करें।

4. पेरेंटिंग से आप क्या समझते हैं? बालकों के पालन पोषण की प्रथा का उनके विकास पर क्या असर पड़ता है?

—------------:0:-----------------